प्रकाशक—
अध्यक्ष,
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

मुद्रक—
व्यवस्थापक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

यो भेद । गच्छ आनन्द ! त वद— आवुस चुन्द । सम्मुखात् मया बुद्धस्य । सम्मुखाद् प्रतिगृहीतं— चुन्द ! लाभाय ते पिंडपातो महाफलविपाकायेती ।"

अथ आनन्दो बुद्धस्याज्ञा उपादाय तत्रोपसक्रम्य चुन्दम् अवोचत्—"सम्मुखात् मया बुद्धस्य श्रुत मया प्रतिगृहीत बुद्धोऽवोचत, लाभाय चुन्दस्य पिंडपातो महाफलविपाकाय। तत् किं निश्चित्य ? य च पिंडपात परिभुज्य बुद्धोऽनुतरा सम्यक्संबोधिं अभिसबुद्ध, य च परिभुज्य परिनिर्वाति, इमौ द्वौ पिंडपातौ समानृशसौ, अनयो न भेद —

चुन्दस्य भक्त भुक्त्वा हि तस्य गेहे मया श्रतम्।
आवाधा स्पृष्टवान् बुद्ध प्रवृद्धा मारणतिकाम् ॥४५॥ १८॥
भुक्तस्य च शूकरमार्दवेन व्याधि' प्रवृद्धा उदपादि शास्तु ।
विरेचन मानो भगवानवोचत् गच्छाम्यहं कुशीनारा नगरम् ॥४६॥ १६ ❋

अथ खलु भगवान् तदा उत्थाय आसनात् स्तोक च अग्रे गत्वा उपसक्र म्य एकस्मिन वृक्षमूले आनन्द अवोचत्।

"पृष्ठ में आनन्द ! आग्लायते, प्रज्ञापय निषीदनम् ।"

"एव"— इति प्रत्युवाच आनन्द शिघ्र च प्रज्ञापयामास निषीदन, तथागतो न्यषीदत्। आनन्दोऽपि अभिवाद्य बुद्धस्य पादौ एकमन्त न्यषीदत् ।

तस्मिन् समये पुल्कसौ मल्लपुत्रो[1] नाम आराडस्य श्रावक कुशीन पावाय मार्गं प्रतिपन्नो भवति। अपश्यन् स बुद्ध अन्यतरस्मिन् वृक्षमूले नि दृष्टवा च रोजो मल्ल शान्तेन्द्रिय अनुत्तर सवरचित महानाग इव सुपरिशुद्ध निर्मल सौमनस्यजातो बुद्ध समुपगम्य शिरसा बुद्धस्य पादौ अभिवाद्य एकम दत् अवाचच्च बुद्ध —

"आश्चर्यं भगवन् शान्तेन प्रव्रजीता सुखविहारेन विहरन्ति ! शटकसतानी पार्श्वतो गतानि नापश्यन् न चाश्रृणोत्। एकदा भन्ते ! अन्तरा च कुशीनगर अन्तराच पावा उभयोर्नगरयो मार्गे वृक्षमूले

❋ यह दोनो गाथाये पाली मे भी थोडे से भेद से मौजूद हैं।
[1] पाली में पुक्कस मल्लपुत्त नाम है।

महा परिनिर्वाण सूत्र

(राहुल साकृत्यायन)

[भारत के प्रसिद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वान महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने प्रस्तुत पुस्तक 'महा परि निर्वाण सूत्र' एक साल पूर्व 'शोध-पत्रिका' में प्रकाशनार्थ भेजी थी, परतु उस समय इसका प्रकाशन नहीं किया जा सका और इसके साथ वाली दूसरी पुस्तक 'महावदान सूत्र प्रथम' का प्रकाशन कर दिया गया था। 'महा परिनिर्वाण सूत्र' और 'महावदान सूत्र प्रथम' को श्री राहुलजी ने चीनी भाषा से प्राप्त किया है। हजारों वर्षों पूर्व जिन ग्रन्थों की की रचना हमारे इस देश में की थी, काल के प्रवाह में अधिकांश खो गई और आज हमें हमारे ही ग्रन्थों को फिर से प्राप्त करने के लिये देश विदेशों की खाक छाननी पड़ती है।

महा पण्डित राहुलजी ने इस क्षेत्र में देश और साहित्य की अनुपम सेवा की है। चीनी भाषा से प्राप्त कर सस्कृत में इसका फिर से अनुवाद किया है। इसी प्रकार से अगर शोध-खोज की जाय और हमारी दृष्टि व्यापक रूप मे फैल जाय तो जिस प्रकार चीनी से यह पुस्तक खोजी गई है; उसी प्रकार मिश्र, यूनान आदि एशियायी देशों के अतिरिक्त योरोपीय देशों में भी हमारी प्राचीन साहित्यिक निधि प्राप्त हो सकती है।

प्रस्तु पुस्तक का 'शोध-पत्रिका' में तो प्रकाशन किया ही जारहा है परन्तु इसकी अलग से पुस्तक के रूप में भी कुछ प्रतियाँ निकाली जारही हैं। महा-पण्डित श्री राहुलजी इसके लिये अभिनन्दनीय है। —सम्पादक]

भारत की विशाल साहित्यिक निधिका एक काफी महत्वपूर्ण भाग मूल से लुप्त होकर अब चीनी और तिब्बती भाषा के अनुवादों में ही सुरक्षित है

उक, दु खेषु न दुर्मना, सुखेषु न सुमना, सहते सर्वं पृथिवीमिव। तस्मादुच्यते श्रमण इति।"

कुमारोऽवदत्–"साधु, अय मार्ग सत्य विषयेषु सम्यग् भयदर्शक, उत्तम प्रणीत परिशुद्धोऽकर्कश, अत्रास्ति आनन्द।" अथासौ आज्ञापयत् सारथिं

–"उपनय रथ तस्योपकठम्।"

तदा कुमार श्रमण अपृच्छत्—"अवहार्य श्मश्रकेशं, चीवरवसान आदाय पात्र क प्रार्थयसे??"

श्रमण प्रत्युवाच—"य प्रव्रजति गेहात् स इच्छति दमयितु चित्त चैतसिक, सदा विरत विषयरागात्, सर्वेषु सत्त्वेषु करुणाय मानोऽविहिंसमान, यन्नचित्त शात एव मार्गे भवति सावधान।"

कुमार उवाच—"साधु, अय परम सत्यमार्ग"

अथाज्ञापयत् सारथिं त्वरित (कुमार)

—आदाय ये महार्घं वस्त्रं रथ च प्रतिनीयाहि महाराजस्य (पार्श्वे)। अहं इदानीं अवहार्य श्मश्रुकेश, परिवास्य त्रिचीवर प्रव्रज्य अगाराद् अनुयु जे (च) मार्गम्। तत् किंविश्रित्य? इच्छामि दमयितु चित्तं चेतसिक परिहरामि दूरत विषय रजम्। परिशुद्धेन आत्मना वसत् पर्येष्ये मार्गवियाम्।"

तदा सारथि शीघ्रमगच्छत् पितु राज्ञ (समीपे) प्रत्यावर्तयितु कुमारस्य आरोहरणार्थं वस्त्र च। तत पश्चात् कुमारोऽवहार्य श्मश्रुकेश परिवास्य त्रिचीवर प्राव्रजत् अगारात्, अन्वयुंजत मार्गम्।

'बुद्ध उवाच– सचेत् भिक्षव? कुमारो दृष्ट्वा जीर्णं व्याधित पुरुषं, अज्ञासीद् '(अस्ति) लोके दु ख', दृष्ट्वा च मृतं पुरुष, (तस्य) लोके चित्तराग प्रश्रब्ध, दृष्ट्वा च श्रमण सर्वशो महाजागृतोऽवातरत् रथात्। तस्मिन काले पदे पदे तत्र सुखाभिभूत दूर (अतिपद) वचन, इदमस्ति सत्त्य गृहात् प्रव्रज्या, अस्ति सत्य निष्क्रमण।

अशृण्वन् देशे मनुष्या –"कुमारोऽवहार्य श्मश्रुकेश धर्म (पर) आच्छाद्य आदाय पात्र अगारात् प्रव्रजितोऽनुयुक्तो मार्गम् "सर्वेऽन्यमन्य अवदन्–" श्रद्धा

सांस्कृतिक इतिहास तथा विचारधारा को समझने के लिये यह जोड़नेवाली कड़ियाँ हैं। एक समय सैकड़ों वर्ष लगाकर भारतीयों और उनके चीनी या तिब्बती सहायकों ने लग कर-इस विशाल साहित्य को अनुवाद के रूप मे तैयार किया। समय जल्दी ही आयेगा, जब कि हमे अपनी इस साहित्य-निधि को फिरसे अनुवाद करके अपनी भारती भाषा में लाना होगा। चीनी भाषा मे भारतीय साहित्य का अनुवाद-कार्य ईसा की प्रथम शताब्दी मे क्या-ये मो-थङ् (काश्यपमातंग) के द्वारा आरम्भ हुआ और काश्यप ६७ ई० मे भारत से चीन पहुँचे थे। उस समय से जो अनुवादो का कार्य आरम्भ हुआ, वह १३ वीं शताब्दी के अन्त (मंगोल सम्राट् कुबिले खानके समय) तक चलता रहा। ६७-१३०० ई० तक जिन ग्रन्थो का अनुवाद हुआ था, उनमें से बहुत-से अब प्राप्य नहीं हैं, लेकिन अब भी साढे चौदहसौ ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनको बत्तीस अक्षर के श्लोकों मे गिननेपर उनकी संख्या साढे तैंतीस लाख श्लोक या तीस-बत्तीस महाभारत के बराबर है। इन ग्रन्थो को सूत्र, विनय और अभिधर्म-पिटक के तीन भागों मे विभक्त किया गया है, यद्यपि पिटक के भीतर "बुद्धचरित" जैसे काव्यों को भी शामिल कर लिया गया है। तीनो पिटकों के ग्रन्थ महायान और हीनयान के भेद के अनुसार निम्न संख्या और परिमाण मे है—

षडायतनप्रत्ययात् स्पर्शः, स्पर्शप्रत्ययात् वेदना, वेदनाप्रत्ययात् तृष्णा, तृष्णाप्रत्ययाद् उपादानं, उपादानप्रत्ययाद् भवः, भवप्रत्ययाद् जातिः, जातिप्रत्ययाद् जराव्याधि-मरणशोक-परिदेव दु'ख दौर्मनस्यम्, इद केवलं दु खस्कन्ध., ज ातिप्रत्ययाच्च भव'–अयमस्ति दु खस्य समुदय ।

दु'खस्कंधसमुदये समाधीयमाने बोधिसत्त्वस्य उद्पादि ज्ञानं, उद्पादि चक्षु', उद्पादि विद्या, उद्पादि आलोक , उद्पादि ऋद्धि उद्पादि साक्षात्कारः । तस्मिन् काले बोधिसत्त्व पुनरात्मनि समाधात्, यो निशोऽचिन्तयत् कस्य अभावे न जरामरणं, कस्य निरोधाद् जरामरणनिरोध ? तत प्रज्ञयाऽभिसमायात जातेरभावे न जरामरण, जातिनिषेधाद् जरामरणनिरोध , भवस्याभावे न जाति , भवनिरोधाद् जातिनिरोध , उपादानस्याभावे न भव , उपादाननिरोधाद् भवनिरोध , तृष्णाया अभावे न उपादान, तृष्णानिरोधाद उपादाननिरोध । वेदनाया अभावे न तृष्णा, वेदना निरोधात् तृष्णानिरोध' । स्पर्शस्य अभावे न वेदना, स्पर्शनिरोधाद् वेदनानिरोध' । षडायतनस्याभावे न स्पर्श , षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोध । नामरुपस्याभावे न षडायतनं, नामरुपनिरोधात् षडायतननिरोधः । विज्ञानस्याभावे न नामरुप, विज्ञाननिरोधात् नामरुपनिरोधः । सस्कारस्याभावे न विज्ञानं, संस्कारनिरोधाद् विज्ञाननिरोध । अविद्याया अभावे न संस्कार', अविद्यानिरोधात् सस्कारनिरोध । अय अस्ति अविद्यानिरोधात् सस्कारनिरोधः, संस्कार निरोधाद विज्ञाननिरोध ,विज्ञाननिरोधात् नामरुपनिरोध', नामरुपनिरोधात् षडायतन निरोध, षडायतननिरोधात् स्पर्शनिरोध', स्पर्शनिरोधाद वेदनानिरोध , वेदनानिरोधात् तृष्णानिरोध ,तृष्णानिरोधाद उपादाननिरोधः,उपादाननिरोधाद् भवनिरोध ,भवनिरोधाद जातिनिरोध , जातिनिरोधाद् जरामरणशोकपरिदेवदु ख दौर्मनस्यनिरोध' ।

बोधिसत्त्व' समाधात् । दुख'स्कन्धनिरोधकाले उद्पादि ज्ञान, उद्पादि चक्षु', उद्पादि विद्या, उद्पादि आलोक , उद्पादि ऋद्धि , उद्पादि प्रज्ञा, उद्पादि साक्षात्कार ।

तस्मिन् काले बोधिसत्त्वः प्रतिलोमक्रमेण अभिसमायात्, द्वादश हेतुप्रत्ययान् यथाभूत अज्ञासीत यथाभूत ज्ञात्वा तत्रैव तस्मिन् आसने (तेस्य) अभूत् अनुत्तर सम्यक् सबुद्ध' ।

में सूत्रों का क्रम भी एक-सा नहीं है, और न पाठ ही एक-सा है, तो भी यह मालूम होता है, कि पालि दीघनिकाय और सस्कृत दीर्घागम एक ही स्रोत से निकले हैं। शायद पालि-स्रोत अपेक्षाकृत अधिक पुराना या महायान से पहले अठारह बौद्ध सम्प्रदाय (निकाय) भारत में प्रचलित थे, जिसमें एक निकाय की एक शाखा धर्म-गुप्तिक भी थी। सम्भवत बुद्धयश ने उसी के दीर्घागम का यहा अनुवाद किया।

बुद्धयश कावुल (कुभा) के भिक्षु विद्वान् थे, उस समय कावुल सास्कृतिक और धार्मिक तौर से भारत का अभिन्न अंग था। बुद्धयश जन्म ३३८ ई० मे हुआ था, ४०० ई० के आस पास वह चीन मे जा ४००-४१३ ई० के बीच राजधानी छाड्-आन् मे रह कर उन्होंने निम्न चार ग्रन्थों का सस्कृत से चीनी में अनुवाद किया-

१. आकाशगर्भ वोधिसत्व सूत्र	सन० ननजियो सूचीपत्र संख्या	६८
२. दीर्घागम	"	५४५
३ धर्मगुप्त-विनय	"	११९७
४ धर्मगुप्त-प्रातिमोक्ष		

बुद्धयश द्वारा अनुवादित दीर्घागम प्राय तेरह हजार श्लोकों के वरावर है। उसीका दूसरा सूत्र यह "महापरि निर्वाण-सूत्र" है। इस सूत्र के एक से अधिक अनुवाद हुये थे। यह महा परिणिर्वाण सूत्र जहाँ हीनयान त्रिपिटक के दीर्घागम या दीघनिकाय का एक सूत्र है, वहाँ महायान का अपना अलग और वहुत विशाल महापरिनिर्वाण सूत्र भी मौजूद है। आज जिस सम्प्रदाय (निकाय) का एक समय भारत में वहुत प्रचार था, उसका नाम और पिटक दोनों ही विस्मृत हो चुके हैं। लेकिन सौभाग्य से चीनी अनुवाद मे विस्मृत हीनयान "मध्यमागम" (५४२), "एकोत्तरागम" (५४७), "सयुक्तागम" (५४४) और "दीर्घागम" (५४५) चीनी अनुवाद में मौजूद है। इनके अतिरिक्त विनय पिटक और त्रिपिटक के वृहत्भाष्य (विभाषायें) भी मौजूद है, इन ग्रथों से हमारे सास्कृतिक इतिहास पर वहुत प्रकाश पडता है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

बुद्धयश ने उस समय चीन में जाकर हमारे इस महान् सास्कृतिक काम को किया, जव कि भारत मे गुप्त-वश के सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन था और जिस समय कालिदास और दिग्नाग जैसी प्रतिभायें भारत मे अपना

चमत्कार दिखला रही थीं। इन्हीं के समय फाहियान भारत की यात्रा के लिये आया।

दीर्घागम के दो-तीन सूत्रों का अनुवाद आज से बीस वर्ष पहले मैंने किया था। उस समय चीन-भाषा और साहित्य की ओर बढने का मेरा ख्याल था। मेरा ज्ञान उस समय पाँच सौ अक्षरों (शब्द-सकेतों) से अधिक नहीं था, लेकिन उसी समय लका में चीनी विद्वान् वाङ्-मो-लम् मेरे साथ रहते थे हम दोनों आपस में विद्या-विनिमय करते थे। उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती, यदि हमारे सयुक्त परिश्रम का फल यह "महापरिणिर्वाण सूत्र" को उन्होंने प्रकाशित देखा होता। थोडे ही दिनों बाद क्षयरोग से घुल-घुल कर मरने की जगह उन्होंने लका के समुद्र मे डूब कर अपना प्राण दे दिया। आज उनके अकृतिम स्वभाव, सौहार्द, विद्या प्रेम और साथ ही जल्दी ही गरम होकर ठडा हो जाना-एक-एक बात की स्मृति दिल में टीस पैदा करती है। चाहे देर से ही हो इस चीनी से हुये सस्कृत के पुनरनुवादका छपना दूसरों को उस कर्त्तव्य की ओर प्रेरणा देगा, जो कि चीनी और तिब्बती भाषा से अपनी विद्या निधियों को भारतीय वेष मे लाने का हमारे सामने है।

—राहुल साकृत्यायन

महापरिनिर्वाण सूत्रम्

एव मया श्रुत-एकस्मिन् समये भगवान राजगृहे विहरति गृध्रकूटपर्वते सार्द्ध सार्धद्वादश शत-भिक्षुण महासघेन।

तेन (खलु) समयेन राजा [illegible]

उपादाय च राज्ञ आज्ञां वर्षकारो महामात्य अभिरुह्य भद्र यानं (रत्नशकट) निरगात् गृध्रकूट पर्वतम् । उपसंक्रम्य तत् स्थान यानात् प्रत्यवरूह्य पदातिक एव यत्र भगवान् तत्र उपसक्रान्त' पृष्ट्वा च अल्पाबाधां.. एक अन्त न्यषीदत् । निषण्णश्च स भगवन्त अवोचत् ....

"राजा मागधोऽजातशत्रु वदते भगवत. (बुद्धस्य) पादौ, अल्पाबाधां बलं प्रांशु विहारं पृच्छति सगौरवं साभिलापम् । वदति च "भन्ते । महर्धिका महाबला महानुभावाश्च वृज्जयः मा नानुवर्त्तन्ते । अहं अभियातुकामइमान् कथं च भगवान् अनुमन्यते ?"

तस्मिन् काले आनन्दोऽपि भगवत पृष्ठतः स्थितो भवति व्यजनमादाय भगवन्त व्यजमान' । भगवान् आमंत्रयामास–

किमिति ते आनन्द । श्रुतं वृज्जय.[1] अभीक्ष्णं सनिपतन्ति, सन्निपत्य· च मिथ सम्पादयति कृत्यम् ?

श्रुत एतद् (भन्ते)–प्रत्यवोचद् आनन्द ।

पुनरपि अवोचद् बुद्ध' "यावदेव एतद् वृद्धिरेव वृज्जीनां नो परिहाणि, तावच्चिर सुरक्षितोऽसौ जनपद न शक्यो ऽभियातु' पराजयाय। (२) किमिति त आनन्द । श्रत वृज्जय न कुर्वते महल्लोकेभ्यो दहरेभ्यश्च भयम् ।

"श्रुतं एतद्"–प्रत्यवोचद् आनन्द' ।

यावदेव आनन्द महल्लका दहरा च समगाः वृद्धिरेव वृज्जीनां नो परिहाणि. तावच्चिर सुरक्षितोऽसौ जनपदः न शक्य अभियातु पराजयाय। (३) किमिति आनन्द । श्रुतवृज्जय' अप्रज्ञप्त धर्म न प्रज्ञापयन्ति प्रज्ञप्त च न समुच्छिन्दन्ति ?"

"श्रुत एतद्"–प्रत्यवोचद् आनन्द

"यावद् एव एतद् आनन्द .....भूयोऽपि वृद्धिरेव वृज्जीनां न परिहाणि, तावच्चिर सुरक्षितोऽसौ देश न शक्य अभियातु पराजयाय। (४) किमिति त आनन्द । श्रुत वृज्जय उपचरन्ति मातापितरौ सत्यकुर्वन्ति मानयन्ति, अनुसरन्ति च आचार्यान् महल्लकान् ?"

---

[1] पालि त्रिपिटका के "दीघनिकाय" का यह सोलहवाँ सूत्र है ।

"तं एतद्"–प्रत्यवोचद् आनन्द ।

(५) किमिति त आनन्द ! श्रुत वृज्जय सत्कुर्वन्ति मानयति चैत्यानि (देवालयान्) देवान् ?"

(६) किमिति तं आनन्द ! श्रुत, वृज्जय यास्ता कुलस्त्रिय परिशुद्धा अमला, ताभि यावत् क्रीडायामपि न प्रहसन्ति मुधा वदन्ति ?

(७) किमिति त आनन्द ! श्रुत वृज्जय उपतिष्ठन्त श्रमणान् मानयन्ति, धर्म्यांश्च रक्षा वरण गुप्ति सविदधति, न कदापि पीडयन्ति ?"

अथ वर्षकारो महामात्य बुद्ध अवोचत् "चेद् एकैकेनापि एतेषा धर्माणा समन्वागतान् जनान्, न शक्य अभियातु, किं पुन सप्तभि धर्मे ।"

अयाचत स अवकाश प्रक्रमाय ।

बुद्धोऽयाचत्—साधु, यस्य त्व काल मन्यसे ।

अथ (खलु) वर्षकार उत्थाय आसनाद् बुद्धस्य त्रि प्रदक्षिणा कृत्वा वदित्वा च प्रक्रान्त

अचिरप्रक्रान्ते च तस्मिन् बुद्ध आनन्द आमन्त्रयामास—"गच्छ त्व आनन्द ! यावत भिक्षव राजगृह उपनिश्रित्य विहरति, तान् सर्वान्, उपस्थानशालाया (धर्मशालाया) सन्निपातय ।

एव (भन्ते) —प्रत्यवोचद् आनन्द ।

अथ स गत्वा राजगृह सगृह्य तान सर्वान भिक्षुन उपस्थानशालाया सन्निपातयामास, अवोचत् च भगवन्त-सन्निपतितो भन्ते ! भिक्षुसघ , यस्य भगवान काल मन्यते ।

अथ भगवान उत्थाय आसनाद् गत्वा उपस्थानशालाया प्रज्ञप्त आसने न्यषीदत् तान भिक्षूश्च आमन्त्रयामास ।

सप्त वो भिक्षव ! अपरिहाणियान धर्मान देशयामि ।

साधु, साधु, सुचिन्तित भगवता, एतस्यैव काल इति ते भिक्षव प्रत्यशृण्वन ।

भगवान एतद अवोचत—तेन शृणुत साधु मनसि कुरुत ।

बुद्ध अवोचत तान भिक्षून—यत इमे अपरिहाणीया धर्मा –(१) प्रथम उच्यते अभीक्ष्ण सन्निपात ,सन्निपाता, सन्नोद्य समुत्थानम् यावत् वृद्धा ... वृद्धाश्च सम्मोद ... न ... धर्म शक्य परिहर्तुम् । (२) द्वितीय उच्यते वृद्धाना

महल्लकानां च परस्परं सम्मोदन, सम्माननं अनुगमनं नानुगमनम्। यावत् च दहरा महल्लका च परस्परं सम्मोदमाना, न अय धर्म शक्य: परिहापयितुम्। (३) तृतीय उच्यते—आचरणं प्रज्ञप्तस्य धर्मस्य न तु अप्रज्ञप्तस्य। यावत् दहराश्च महल्लका च परस्परं सम्मोदमाना, न अयं धर्म शक्य परिहापयितुम्। (४) चतुर्थ उच्यते—ये ते भवन्ति भिक्षव प्रतिवला' सघपितर' प्राज्ञा तान् सर्वे मानयन्ति अनुवर्त्तन्ते। यावत् ०। (५) पचम उच्यते–सवरचित्तचैतसिकाना गौरवं माननं परमम्। यावत् ०। (६) षष्ठ. अपरिहाणीय. धर्म' उच्यते—परिशुद्ध आचरण ब्रह्मचर्यं काम–राग–लोभाना-मननुवर्तनम्। यावत् ०। (७)सप्तम उच्यते—प्रथम अन्ये पश्चात् अह, जातरूपरजतेपु (रूप्यके) अलोभ। यावत् ०।

बुद्ध अवोचत तान् भिक्षून्—पुनश्चापरे ऽपि भवन्ति सप्त अपरिहाणीया. धर्मा— (१) प्रथम –अणुमात्रेपु वस्तुपु, न सौमनस्य नानाभाव, तावद्वृद्धि. एव अस्य धर्मस्य नो परिहाणि। (२) द्वितीय –यत् तस्य सौमनस्यं तूष्णीभावेन संप्रलापाएम'। (३) तृतीय. यदसौ न भवति निद्रा राम. न च कुसीती। (४) चतुर्थ. यद सौ न भवति भेदक. निरर्थक (वस्तु) प्रलपन्। (५) पंचम —यदसौ मुधा (व्यर्थ) न श्लाघते आत्मानम्। (६)षष्ठः—यदसौ न भवति पापसहाय। (७) सप्तम.—यदसौ विहरति पर्वत वन प्रस्थेपु एकाकी। एवं भिक्षव'! वृद्धि भवति धर्मस्य, न परिहाणि।

पुनश्च अवोचत् भगवान्—"भिक्षव'! अपरे च भवन्ति सप्त इमे धर्मा., यै वृद्धि धर्मस्य नो परिहाणि'। कतमे सप्त? (१) प्रथम —यद सौ श्राद्ध भवति, श्रद्धाति तथागतस्य परम सत्यं परमा ..परिपूर्णा बोधि। (२) द्वितीय —यदसौ ह्रीमान् भवति, जानाति आत्ममिथ्यात्वम्। (३) तृतीय —यदसौ अपत्रपी भवति अपत्रपति पापकर्मण। (४) चतुर्थ—यदसौ वहुश्रुत लभते आचरितुं उच्चावाच कुशल सा गभीरं प्रणीत परिशुद्ध विमल परिपूर्णं ब्रह्मचर्यम्। (५) पंचम'—यदसौ आरब्ध वीर्यो भवति प्रधाने, अकुशल विहाय कुशले वीर्य आरमते, न तत् परिज-हाति। (६) पष्ठ —यदसौ स्मृतिं भावयति न च विस्मरति पूर्वं (शिक्षितं) शिक्षा-पदम्। (७) सप्तम —यदसौ विद्या भावयति जानाति च उत्पाद-निरोधं धर्माणा, अनुगच्छति आर्यमूलं सर्वेषा दु'खकारणाना अन्तकरम्। यावद् इमे सप्त धर्मा, वृद्धि एव तावत् न परिहाणि:।"

पुनश्च अवोचत् बुद्ध —"भिक्षव ! अपरेच भवन्ति सप्त धर्मा, यै धर्म वृद्धिरेव भवति विरूढि नो परिहाणि । कतमे सप्त? (१) प्रथम —बुद्धे बहुमानम् । (२) द्वितीय — धर्मे बहुमानम् (३) तृतीय — सघे० । (४) चतुर्थ — शीले० । (५) पचम — समाधौ० । (६) षष्ठ —मातापित्रो सबहुमान अनुवर्त्तनम् । (७) सप्तम — अप्रमादे बहुमानम् एवं इमे सप्तधर्मा, यै वृद्धि एव भवति धर्मस्य नो परिहाणि ।"

पुनश्च अवोचद् बुद्ध —"भिक्षव ! अपरे च भवन्ति सप्त धर्मा यै वृद्धिरे धर्मस्य नो परिहाणि ? (१) प्रथम —भावयति कायेऽशुचिम् । (२) द्वितीय — भावयति भोजनेऽशुचिम् । (३)तृतीय —न अस्य सौमनस्य लोके । (४) चतुर्थ — नित्य अनुस्मरति मृत्युसञ्ज्ञाम् । (५) पचम — उत्पादयति अनित्यसञ्ज्ञाम् । (६) षष्ठ —अनित्ये दु ख-सञ्ज्ञाम, (७) सप्तम —दु खेच अनात्मसञ्ज्ञाम् । इमे तै सप्त धर्मा ।०"

अवोचद् बुद्ध —"भिक्षव ! अपरेच भवन्ति सप्त धर्मा ।०। (१) प्रथम — सबोध्य ग भावयति प्रविविक्ते, काम-राग-लोभेषु अनवलिप्त असस्कृत स्वभाव । (२) द्वितीय —धर्म-विचय सबोध्य ग भावयति । (३) तृतीय —वीर्यसबोध्य ग०। (४) चतुर्थ —प्रीतिसबोध्यग ।० (५) पचम —प्रश्रब्धिसबोध्यग०। (६) षष्ठ — समाधिसम्बोध्यग ।० (७) सप्तम — उपेक्षा (आरक्षा) सबो ध्यग भावयति । इमे तै सप्त धर्मा ।०" अवोचद बुद्ध — "भिक्षव ! भवन्ति षट् अपरिहाणीया धर्मा कतमे षट् ? (१) प्रथम — भिक्षवो मैत्र कायकर्म समुपस्थापयन्ति, न भेद उपस्थापयन्ति सघे । (२) द्वितीय —मैत्र वाक्कर्म प्रत्युपस्थापयन्ति न च परुष वदन्ति । (३) तृतीय —मैत्र मनस्कर्म०, न व्यापादचित्त उपस्थापयन्ति । (४) चतुर्थ —यै तै लाभा परिशुद्धा भोजना न तेषा सर्वेऽ-प्रतिविभक्ताना भोगिनो भवन्ति । (५) पचम — यानि तानि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तानि भावयन्ति, [illegible] [illegible] आर्या [illegible] [illegible] दु खक्षयाय ता च । [illegible] षट् धर्मा ।०।

[illegible] बुद्ध —भिक्षव ! अपरे च भवन्ति षट् अपरिहाणीया धर्मा, [illegible] [illegible] [illegible] एव भवति नो परिहाणि । (१) प्रथम —बुद्ध अनुस्मरति । (२) [illegible] [illegible] [illegible]

पचम —दान। (६) षष्ठ —देवान् अनुस्मरति। इमा षड् अनुस्मृती भावयति। ०। एभि षड्भि धर्मैं समन्वागातस्य वृद्धि भवति नो परिहाणि।

अथ भगवान् राजगृहं यथा भिरक्त विहृत्य आनन्द आमत्रयामास—"सशामय पात्रश्चीवर आयाम आनन्द पाटलिपुत्र नगरम्"

एव (भन्ते)—प्रत्युवाच।

अथ भगवान् निवास्य पात्रश्चीवर आदाय सार्द्धं महता भिक्षु सघेन प्रकान्त मगधेषु अनुपूर्वेण पाटलि ग्राम अवसृत्य पाटलि वृक्ष मूले न्यषीदत् अशृण्वन् (खलु) उपासका —बुद्ध (किल) महता सघेन दूरात् पाटलि ग्राम अनु प्राप्त पाटलि वृक्षस्य मूले निषण्ण।

अथ (खलु) त ग्रामात् निष्क्रम्य दूरत अपश्यन् भगवन्त पाटलि वृक्ष मूले स्थित भासमान अनुतम शान्तेन्द्रिय सुसयत अग्र्य महानागोपम परिशुद्ध विगत रजोमल यथा जल द्वात्रिंशल्लक्षणा शीति व्यजनै समलकृतकायम्। दृष्ट्वा च सौ मनस्यजाता ते यत्र बुद्ध स्थित तत्र गत्वा शिरसा पादौ अभिवाद्य एक मन्त-न्यषीदन्।

अथ खलु भगवान् आनु पूर्व्वेण धर्मं अदिशत् तैभ्य लाभ प्रदर्शयन् श्रुत्वाच बुद्ध भाषित धर्मं ते उपासका बुद्ध अवोचन्—

'इच्छामो भन्ते! गन्तु शरण बुद्धस्य धर्मस्य आर्य सघस्य च, अनु जानातु भगवान् अनुकप उपादाय। उपासका वय अद्यतोऽग्रे प्राणाति पातात् विरता अदत्ता-दानाद् विरता कामेषु मिथ्याचाराद् विरता मृषावादाद् विरता सुरापानाद् विरता शील आचरन्त न तद् विस्मरिष्याम'। अधिवासयतु नो भगवान् सार्द्धं महता भिक्षु सघेन भक्त-दान अवलोकयतु च अनुकप उपादाय।"

अध्यवासीत् च भगवान् तूष्णी भावेन। अथ (खलु) त उपासका उत्थाय आसनाद् बुद्ध अभिवाद्य त्रि प्रदक्षिण कृत्वा चागमन्। तथा गताय आवसथागार समार्ज्य आसनानि प्रज्ञाप्य उदक संस्थाप्य, प्रज्वाल्य गध-प्रदीप आस्तीर्य भद्रासन (रत्नासन) दान सविधाय भगवन्त उपसंक्रम्य ऊचु —

"निष्ठित (सस्कृत) भन्ते! दानं (आवसथागारं) यस्य इदानीं भगवान काल मन्यते"

अथ (खलु) भगवान् उत्थाय आसनाद् विवास्य पात्रचीवर आदाय साध महा सघेन आवसथ उपसक्रान्त पादौ प्रक्षाल्य परिमार्ज्य हस्तौ आसने न्यषीदन्। भिक्षवोऽपि वाम पार्श्वे न्यषीदन्, उपासकाश्च दक्षिण पार्श्वे न्यषीदन्।

अथ भगवान् तान् उपासकान् आमत्रयामास —

पच इमे गृहपतय ! आदिनवो दु शीलस्य शीलविपत्ते । कतमे पच ? (१) प्रथम —लुब्ध चितस्य तृष्णा न परिपूर्यते। द्वितीय —लब्ध भोग प्रतिदिव निगच्छति।"

(३) तृतीय —यामेव परिषद गच्छति न मानितो भवति (४) चतुर्थ — लोके तस्य पापक कीर्ति शब्द अभ्युद्गच्छति (५) पचम —कायस्य भेदात् परम्मरणात् निरये उपपद्यते।

पुनश्च अवोचद् भगवान तान उपासकान—

"पच इमे गृहपतय । आनृशसा शीलवत शील सपभे । कतमे नाम पच ? (१) प्रथम —यथा काम लाभी भवति भोगस्य (कामस्य) (२) द्वितीय —वृद्धिरेव भवति भागस्य नो परिहाणि । (३) तृतीय —यामेव मनुष्य परिषद गच्छति, मानिता भवति मनाप । (४) चतुथ —लोके तस्य कल्याण कीर्ति शब्द अभ्युद्गच्छति (५) पचम —कायस्यभेदात् परम्मरणात् स्वर्गे लोके उपपद्यते।"

अथ भगवान निष्क्रान्त अर्धरात्रे उपासकान अवोचत्=यूय अपि प्रति गच्छत।

अथ त उपासका प्राप्य बुद्धस्य अनुज्ञात्रि प्रदक्षिण कृत्वापादौ अभिवाद्य प्रक्रान्ता।

अथ (खलु) भगवान प्रति सल्लयने स्थित रात्रे पश्चिमे यामे प्रत्यूष समये [illegible] चक्षुषा [illegible] अपश्यत् [illegible] देवता वास्तूनि परिगृह्णाति महेशाख्या देवता [illegible] च वास्तूनि परिगृह्णाति

[illegible] ([illegible]) [illegible] अभ्यक्रम्य प्रज्ञप्ते आसने न्यषीदन्। [illegible]—

[illegible] ([illegible]) [illegible] नगरमापयति ?" आनन्द [illegible] — [illegible] नगर मापयन्त [illegible]

बुद्ध उवाच—"पश्यन आनन्द ! यथा अस्य नगरस्य देवैः सार्धं समत्र्य भवति अह आनन्द ! पश्चिमाया रात्रौ प्रत्यूष समये उत्थाय प्रतिमल्लयनात् दिव्येन चक्षुषा अपश्य सबहुला देवता वास्तूनि परिगृह्णन्ती—महेशाख्या मध्यमा नीचा च परिगृह्णन्ती । यस्मिन् आनन्द ! प्रदेशे महेशाख्या देवता वास्तूनि परिगृह्णन्ति तत्र राज्ञा निवेशनानि सुख समृद्धानि भविष्यति, यत्र मध्यमा देवता वास्तूनि परिगृह्णन्ति तत्र मध्यमाना मनुष्याणा निवेशनानि, यत्र नीचा देवता वास्तूनि परिगृह्णन्ति, तत्र नीचाना मनुष्याणा निवेशनानि भविष्यन्ति । बहु अल्प वा पुण्य प्रत्येक अनु गच्छति । इद आनन्द ! पाटलिपुत्र भविष्यति आर्यं आयतन मनुष्यावास वणिक्-पथ , देश धर्मस्य सत्यस्य आर्जवस्य च । इद अथ नगर सर्वतोऽविनाश्य भविष्यति । अस्य (खलु) आनन्द ! त्रय अन्तराया भविष्यन्ति । प्रथम —महद् उदकम् जलौघ द्वितीय —महाग्नि । तृतीय —अन्तर्-वहिर्धामिथ मनुष्याणा भद ; तदैव विनश्यति इद नगरम् ।

अथ (खलु) पाटलि पुत्रका उपासका तस्या रात्रौ दान (भोजन) प्रतिपाद्य बुद्ध उपसंक्रम्य अवोचन्

"निष्ठित भन्ते ! भक्त , यस्य इदानीं भगवान् काल मन्यते ।" अथ (खलु) पाटलि पुत्रका उपासका स्व हस्तत खादनीयेन परिवारयामासु सतर्पयामासु । निष्ठित भवते जल प्रावार्य अन्यतम नीचं आसनं गृहीत्वा बुद्धस्य पुरत न्यषीदन् ।

अथ भगवान् तान आमत्रयामास -

१ यस्मिन् प्रदेशे कल्पते वास पडित जातिक ।
शीलवतो भोजयन्ति सयतान् ब्रह्मचर्यके ॥
यास्तत्र देवता आसन् कुशला तुष्टिमानसा ।
ता' पूजिता पूजयन्ति मानयति च मानिता

दानेन मैत्र्याच सानुक पचित्ता देवता स्तुता , सदा भवन्ति कुशलेन समन्वागता नोऽकुशलेन ।

अथ भगवान् आदिश्य धर्मं तान् गृहपतीन् उत्थाय आसनात् प्रकान्त सार्धं महता भिक्षु सघेन । तदा वर्षकारश्च महामात्य भवत पृष्ठ अनुबद्धो भवति । तस्य एव

---

१ पाली में यह गाथा रूप में है, किन्तु चीनी में गद्य ।

भवति। "येनाद्यश्रमणा गौतमो नगर द्वारेण निष्क्रमिष्यति, तद् गौतमद्वार नाम भविष्यति येन तीथन गगा नदी तरिष्यति, तद् गौतम तीर्थ नाम भविष्यति।" अथ भगवान् निष्क्रम्य पाटलि पुत्रात् नदी तीर उपसक्रान्त , तस्मिन समये नदीं तीरे सवहुला मनुष्यानाव आरूह्य तरन्ति, केचन उडुप कूल वा समारूह्य नदी तरन्ती। अथ खलु महान सघो यथा वलवान् पुरुप समिंजित बाहु प्रसारयेत् तथा क्षिप्रमगमत् पर तीरम एतदर्थं विदित्वा तस्या वेलाया भगवान् गाथयाऽवोचत—

बुद्धोऽस्तिह्यर्णवे नावचारी दुर्गो नदीं तारयति धर्म सेतु ।
महारथी तस्य रथेन देवा मनुष्या तरन्ति ॥ १ ॥
स्वय छिन्न ग्रंथि तीर्णतट उत्थित आप ।
शमि तान्तरान छिन्न वन्धन निर्वाणं प्रति पद्यते ॥ २ ॥

अथ भगवान वृज्जिपु चरमाण कोटि ग्राम उपसक्रम्य एकस्मिन् वृक्षमूले स्थितोऽवोचत तान भिक्षुन

"चत्वार इमे भिक्षव ! धर्मा गम्भीरा । कतमे चत्वार ? (१) प्रथम — आर्यं शीलम । (२) द्वितीय —आर्या समाधि (३) तृतीय —आर्या प्रज्ञा । (४) चतुर्थ आर्या विमुक्ति । इमे धर्मा गम्भीरा सूक्ष्मा प्रणिता पर्त्तोवा । एपाच भिक्षव ! अनुवोधान दीर्घरात्र सधावित मगत मम च युष्माकच ।"

अथ (खलु) भगवान एत मर्थं विदित्वा गाथा (उदान) उवाच (उदानयामास)
शील समाधि प्रज्ञाच विमुक्तिश्चाप्यनुत्तरा।
इति बुद्धा अभिज्ञाय दुःख स्यान्तकरा गता ॥ ३ ॥

अथ (खलु) भगवान कोटि ग्रामे यथा भिरक्त विहृत्य अवोचत आनन्द—
[illegible] आनन्द [illegible]।

[illegible] भन्ते ! प्रत्युवाच आनन्द ।

[illegible] भगवान [illegible] गत्वा [illegible] भिक्षु [illegible]
[illegible] विहरति।

[illegible] (खलु) [illegible] भगवन्त [illegible] (२) द्वितीय [illegible] (३) तृतीय
[illegible] ([illegible]) ([illegible]) ([illegible]), ([illegible] (६)

षष्ठ पो-य-लु कटिष्यम.), (७) सप्तम पो-तु-लु (भद्र) (८) अष्टम वु-पो-तु (सुभद्र), (६) नवम तुष्ट (तु-लि-सि-तु, (१०) दशम सन्तुष्ट (त्र-यु-लि) (११) एकादश वु-सु (नन्द.), (१२) द्वादश. व-सु-तु-लु (सुदत्त नाम इत्येव-मादय जना इदानीं कालकृता भवन्ति तेषा का गति क सपराय. ? अपरेच सन्ति पचाशत जना, कालंकृता अपरेच पचशत् जना कालकृता, तेषा का गति क सपराय ? " एतत् मनसि कृत्वा उत्थाय प्रति सॅल्लायन स्थानात् उपसक्रम्य भगवत पादौ शिरसा अभिवाद्य एक मन्त न्यषीदत् अवोचत् च भगवन्त —

" प्रति सॅल्लीनस्य मे भन्ते ! मनसि एतद् अभूत—इह नादिका ग्रामे साढ इत्येव मादय—

द्वादश उपासका कालकृता । अपरेच पचाशत जना कालकृता । अपरेच पचशत जना कालकृता तेषा का गति क सम्पराय । व्या करोतु में भन्ते ! अनुकम्पा उपादाय !

बुद्ध उवाच—साढ इत्येवमादय आनन्द ! द्वादश जना छित्वापच अवर-भागीयानि सयोजनानि कालकृता औपपातुका तत्र स्वर्गे परिनिर्वायिन अनावृति धर्माण । अपरेच पचाशद्जना कालकृता त्रयाणा सयोजनाना परिक्षयाद् रागद्वेश मोहानां तनुत्वात् सकृदागमिन सकृदेवइमं लोक आगम्य दु खस्यान्त करिष्यन्ति । सातिरेका पचशतजना नादिकाया कालकृता त्रयाणा सयोजनाना परिक्षयात् स्रोत आपन्ना अविनिपात धर्माण नियता सम्बोधिपरायणा सप्तकृत्व इम लोक आगम्य दु खस्यान्त करिष्यन्ति । अनाश्चर्यं खलु पुन ते एतद् आनन्द ! यत् मनुष्य काल कुर्यात तदा तथागत उपसक्रम्य प्रच्छथ, विहिंसा चैषा स्वय व स्यात् तथा गतस्यच ।"

"सत्य भन्ते । एवमेतत् " प्रत्युवाच आनन्द ।

बुद्ध उवाच—"तस्मात् ते आनन्द ! धर्मादर्श नाम धर्मपर्याय देक्ष्यामि येन समन्वागता आर्यश्रावका आत्मना एवव्याकुर्यु जाति निरासम् । छित्वातिसृन अकुशल पथान स्रोत आपत्ति तान् लभते, सप्त परम इमलोक आगम्य दु खस्यान्त करिष्यति । शक्नोति च स एव व्याकर्तुम् । तेन आनन्द । अय धर्मादर्श उच्यते । आर्य श्रावक बुद्धे अवेत्य प्रसादेन समन्वागतो भवति श्रद्धधाति बुद्धस्तथागत भगवान् अर्हन् सम्यक सबुद्ध दशगुण सपन्न इति । धर्मे प्रसन्न श्रद्धधाति

स्वाख्यातो धर्मं सां दृष्टि क अकालिक निर्वाणो पनयिक प्रत्यात्म वेदितव्य विज्ञैरिति सघे प्रसन्न श्रद्धाति सु प्रतिपन्न भगवत श्रावक सघ ऋजु प्रतिपन्न न्याय प्रतिपन्न सा मीची प्रतिपन्न' मार्गफल प्रतिपन्न धर्मकाय परिपूर्ण यदि द चत्वारि पुरुष युगानि अष्टौ पुरुष पुद्गला स्रोत आपत्ति प्रतिपन्नक स्रोत आपन्नक, सकृदागामिता प्रतिपन्नक सकृदागामी, अनागामिता प्रतिपन्नक, अनागामी, अर्हत्व प्रतिपन्नक अर्हन। एव तथा गतस्य आर्य सघ आह्वानीय प्राघुणेय पुण्यक्षेत्र लोकस्य आर्य कान्तै शीलै समन्वागत अखडै अच्छिद्रै।

अशवलै अकल्मषै विज्ञप्रशस्तै समाधि सवर्तनिकै। अथ खलु स आनन्द! धर्मादर्श येन आर्य श्रावक जानीयु जाति निवास क्षयण अकुशल पथाना अन्त कृत्वा स्रोत आपन्न, सप्त परमनियत दु खस्यान्त करिष्यति इति व्याकर्तु अल स।"

अथ भगवान नादिकाया यथा भिरक्त विहृत्य आनन्द आमन्त्रयामास—"आयाम आनन्द' वैशाल्या देशे।" "एव" इति।

अथ भगवान निवास्य पात्र चीवर आदाय महता भिक्षु सघेन सार्धं नादि यात वैशाल्या प्रक्रान्त। तत्र एकस्मिन वृक्ष मूले निषण्ण। अश्रुणोत (खलु) आम्रपाली गणिका='बुद्ध श्रावकै सार्धं अनु प्राप्त वैशाल्या एकस्मिन वृक्ष मूले निषण्ण।"

अथ सा भद्र यान अभिरुह्य प्रायासीत् बुद्धस्य मति के प्रणादानार्थम्। दूरत एव अन्तरा (मार्गे) अपश्यन् भगवन्त सम्यगुप्त दर्शन शान्तेन्द्रिय, द्वात्रिंशत् लक्षण परिपूर्णं नक्षत्रेषु चन्द्रमिव। दृष्ट्वा च हृष्ट तुष्टा यानात् प्रत्यवरुह्य पदाति का एव भगवन्त नमस्कृत्य शिरसा पादौ अभिवाद्य एक मन्त न्यषीदत्।

भगवाँश्च अध्यवासयत् तुष्णीभावेन् ।

अथ (खलु) सा तुष्णीभावेन भगवतोऽधिवासन विदित्वा उत्थाय आसनात् शिरसा पादौ अभिवाद्य बुद्धस्य प्रदक्षिण कृत्वा प्रक्राता । अचिरप्रक्रान्ताया तस्या बुद्ध आनन्द आमत्रयामास—''आयाम आनन्द ! सार्धं व तस्या वने ।''

''एव भन्ते ' आनद ।

अथ बुद्ध उत्थाय आमनात् पात्र-चीवर आदाय सहस्र द्विशतपचाशत् परिमितेन भिक्षुसंघेन सार्धं तस्या वन अवासरत् । अशृण्वन् (खलु) वैशालिका लिच्छवय —'''बुद्ध (किल) आम्रपालि वने विहरति ।'' अथ ते भद्राणि याना नि-हरित यान (रथ) हरिताश्व वस्त्र-च्छत्र ध्वज परिवारै सर्वे हरितानी सर्वनीलपीतलौ हिताव-दातानि पचवर्णानि पचशत यानानि रथ-वस्त्र वर्णेपु समानानि अभिरुह्य अगमम् भगवन्त द्रष्टुकामा । अथ (खलु) आम्रपाली बुद्धस्य दशनात् गेहं प्रत्यावर्तन्ती अन्तरा मार्गे क्षिप्र गच्छन्ति रथेन तैपां रथ ध्वज छत्र च प्रतिवर्तयामास । अथ रथिन (लिच्छवय) व्याजहरु—''किन्ते अम्बिके ! वलं यद् मार्गा दूरतो न चरित्वा घढयसि नो रथ ध्वस यसिच ध्वजछत्रम् !

सा प्रत्युवाच—''यथाहि मे आर्या ! बुद्ध निमत्रित. श्वस्तनाय भक्ताय, यामि गेह भक्त उपसम्पादयितु', तस्माद् क्षिप्र गच्छन्ति नाशकव स्थान परिवर्ज्य गन्तुम् ।''

अथ ते उच —दे हि हे आम्रपालि ! एत भक्त प्रथम अस्माभिर्दातव्य, वयन्ते दास्याम शत सहस्र, रजत कार्षापणम् ।''

सा प्रत्युवाच—''प्रथम निमन्त्रितो भगवान् न शक्ता दातुम ''

अथ ते रथिन पुनरूचु —''इतो ऽपि अधिक ते दास्याम षोड़शगुण शतसहस्र सुवर्णकार्पापण, देहि न प्रथमम् ।''

सा उवास—''न दास्यामि, न शक्यं दातु इद निमत्रणम् ।''

अथ ते रथिन ऊचु —''इह ते दास्याम राष्ट्रधनस्य मध्य (अर्ध) भाग देहि न प्रथम निमत्रणम् ।''

सा प्रत्युवाच—स चेत् आर्या सम्पूर्ण राष्ट्रधन दास्यथ, नाह तावद् गृहीष्यामि भगवान् हि विहरति मम उद्याने, प्रथमं मे निमन्त्रित भगवान् निश्चित एतत् न कादपि दास्यामि ।"

अथ (खलु) ते रथिका परस्पर-हस्त चालयन्त उदश्वसन् "जिता वत भो ! एतया दारीकया, वचिता वय प्रथम पुण्यत ।"

अथ ते पुरस्तात् सरलेन पथा प्रायु तस्या उद्याने अपश्यत् खलु भगवान् तानि पचशत रथिकान रथै अश्वै अनेक दशसहस्रै मार्ग परिपूर्य आगच्छत । दृष्ट्वा च भिक्षून् आमन्त्रयामास—

"येष वो भिक्षव उद्याने क्रीड़ारताना महानुभावाना देवाना त्रायास्त्रिंशाना द्रष्टु कामता अवलोकयथ ते सदृशा एते उपसंहरथ भिक्षव ! सयनचित्ताना एतेषा महानुभावताम् कथ भिक्षव । चित्त सयन भवति इह भिक्षु अध्यात्म काये कायानुपश्यी विहरति आतापी सप्रजानन स्मृतिमान न मूढ-स्मृति विनीय लोके अभिध्या दौर्मनस्य बहिर्वा काये कायानुपश्यी विहरति आतापी सप्रजानन स्मृतिमान न मूढस्मृति विनीय लोके अभिध्या दौर्मनस्य, अध्यात्मबहिर्वा कायानुपश्यी आतापी सप्रजानन स्मृतिमान विनीय लोके अभिध्या दौर्मनस्य वेदनाया ० चित्ते ० धर्मेषु धर्मानुपश्यी आतापी सप्रजानन स्मृतिमान ० ।

यथा प्रभास्वर आकाशे प्रभासते । अथ तानि पचरथिकशतानि परिज गृह्य आसनानि बुद्धश्च केवल तत्र सघे प्रभया प्रभासमान ।

तस्मिन् काले तस्या परिषदी पिङ्- कु (पैंग्य) नाम ब्राहमण निषण्णो भवति । अथ स उत्थाय आसनाद् दक्षिणा सविवृत्य दक्षिणजानु पृथिव्या पातयित्वा यत्र भगवान् तत्र अजलि प्रणामप्य गाथागिरभापत—

ईक्ष्वाकु राजा गुणेन लभते कुशल फलम् ।
काये रत्नमुक्तावर्मधारी भगवान् स्वकोत्तर ॥ ४ ॥
ईर्यापथेन चालयन् त्रिसाहस्रीं यथा हिमगिरौ प्रभा ।
यथा फुल्ल पद्मपुष्प मधुगधि सुसूक्ष्मसुन्दरम ॥ ५ ॥
इहापश्य बुद्धस्या प्रभा, सूर्यो यथा प्रथमोदित ।
चद्रो यथा चरति नभसि मेघजालैर्विनिर्मुक्ते ॥ ६ ॥
भगवाश्च एव प्रभया प्रभासते लोके ।
तथागतो पश्यति ज्ञान ज्योतिषा यथान्धकारे पश्यत्युल्कया ॥ ७ ॥
ददाति संघ स्वप्रभया चक्षु नाशयति विचिकित्सा जनस्य ।

अथ पचरथिक शतानि (लिच्छवय) उपश्रुत्य इमा ।
गाथा पैंग्य ब्राह्मण उचु— "पुनरपि वद ।"
अथ पैङ्ग्य पुरस्ताद् बुद्धस्य पुन अन्वभाष्त ।
पचरथिकशतानि च गाथा श्रुत्वा एकैक रत्नपट पैंग्याय प्रादात ।

अथ पैंग्य त रत्नपट तथागताय विसर्जयामास, प्रति जग्राह च बुद्धो अनुकम्पा उपादाय । तस्मिन् काले भगवान् उवाच तान् वैशालिकान् रथिकान्—

'लोके भवति पच रत्नानि सुदुर्लभानि कतमानि पच ? (१) प्रथम सुदुर्लभ तथागतस्य प्रादुर्भावो लोके (२) द्वितीय- तथागतो धर्म दिशति जनेभ्य इद अपि सुदुर्लभ मनुष्याणाम् । (३)तृतीय- तथागतो धर्म दिशति शक्नोति त श्रद्धया ज्ञातु इद अपि दुर्लभ मनुष्याणाम् ॥ ० ॥ (४) चतुर्थम्- तथागतो धर्म दिशति, शक्नोति, त उद्गृहीतुम् ॥ ० ॥ (५) पचम- सम्मुख आगत भय अन्तराय जानाति विपरिण-मयितुम ॥ ० ॥ इमानि पच रत्नानि सुदुर्लभानि लोके ।"

अथ पचशतरथिका श्रुत्वा बुद्धदेशिता देशना आत्तमनम बुद्ध ऊचु- "अधिवासयतु भगवान् श्वस्तन नो भक्त सार्धं सर्वे श्रावकै

बुद्ध उवाच रथिकान्– "प्रागेव वो निमत्रितोऽह प्रतिगृहीत मे आम्रपालि-गणिकाया श्वस्तनम् निमत्रणम् ।"

अथ तानि पचशतरथिका प्रागेव निमत्रितो बुद्धोऽम्रपालिकया इति हस्त चालयन्त परस्पर उचु – "इच्छामो दान दातु तथागताय वचिता स्म प्रथम एव तया गणिकया ।" अथ गणिकया ।" अथ ते उत्थाय आसनाद् बुद्धस्य पादौ अभिवाद्य त्रि प्रदक्षिण कृत्वा प्रतिनिवृत्ता ।

अथ (खलु) आम्र पाली गणिका तस्या रात्रौ विविध दान (भोजन) सपाद्य द्वितीयस्मिन् दिने उपसक्रम्य भगवन्त काल आरोचयामास ।

अथ भगवान् निवास्य पात्र-चीवर आदाय सार्धं सहस्र द्विशत पचाशद्-भिक्षुभि पश्चात् पुरत परिवारित तस्या निमत्रण स्थान उपसक्राम्य आसन उपागृह्णात् ।

अथ आम्रपाली गणिका प्रणीतेन खादनीयेन भगवन्त सतर्पयामास भिक्षुसघ च । भक्ते च निष्ठिते अपनीतपत्रपाणौ च भगवति गणिका सुवर्णभृ गारक समादाय हस्तौ जलेन प्रक्षाल्य उवाच बुद्ध –"अस्या वैशाल्या सर्वेषा उद्याने ममेव प्रणीततरम् । प्रतिगृह्णातु मे इद तथागतोऽनुकपा उपादाय ।"

बुद्ध उवाच गणिका– " देहि इद उद्यान बुद्ध प्रमुखाय चातुर्दिश सघाय तत् कि नि श्रि य ? तथागतस्य यानि भवति उद्यान, वन, कोष्ठक गेह, चीवर पात्र पदवस्तूनि, दात दानानि तानि के नापी मारेण, शक्रेण, ब्रह्मणा महेशाग्न्येन वल देवन न शक्यानि परिगृहीतुम ।

तस्माद् उद्यान (आराम) बुद्ध प्रमुखाय चातुर्दिशाय भिक्षुसघाय प्रदत्तो प्रति गृह्य च तद भगवान अनुकपा उपादाय अरोचत् च गाथया ।

दत्त स्तूपारामाणा दान शीतलस्य फलोद्यानस्य ।

दानकथां, शीलकथा, स्वर्गकथा कामेषु आदिनव अपकार सक्लेशं कुशलस्य प्रधानात्। यदा भगवान् अज्ञासीत तां कल्यचित्तां, मृदुचिता, विनीवरणचित्ता, उदग्रचित्ता, प्रसन्नचित्तां सूक्ष्मनीवरण-स्कध विलयनसुकरचित्ता, अथ बुद्धानां समुत्कर्षिका धर्म-देशना तस्यै अदिशत—दु ख आर्यसत्य, दु खसमुदयः, दु.खनिरोध , दु'खनिर्गमा-पेक्षितम् आर्य सत्यमिति। अथ तद् यथापि नाम शुद्ध कंबल अपगतकालक सम्यगेव रजन प्रतिगृह्णीयात् एवमेव आम्रपालिगणिकाया' तस्मिन् एव आसने विरजं विमल सर्वधर्मेषु धर्मेन्द्रियं धर्मचक्षु उदपादि। अथ सा दृष्टधर्मा प्राप्त धर्मा विदितधर्मा पर्यवगाढधर्मा वैशारद्यप्राप्ता, अपायेऽविनिपातधर्मा अभयप्राप्ता बुद्ध अवोचत्—एषाऽहं बुद्धं शरण गच्छामि, धर्म शरण गच्छामि, सघं शरण गच्छामि, द्वितीय-मपि०, तृतीय मपि बुद्ध शरणं०। उपासिकां नां भगवान् धारयतु अद्यतोऽग्रे पाण्यु-पेतां शरण गतां यावज्जीव प्राणातिपात-दत्तादान काम-मिथ्याचार-मृषावाद-मद्यपान विरताम्।

अथ सा भगवत पच शिलानी लब्ध्वा विरता पूर्वव्यवसायेभ्य क्षीणमला उत्थाय आसनात् बुद्ध अभिवाद्य प्रक्रान्ता।

अथ भगवान् वैशाल्यां यथाभिरक्त विहृत्य आनद आमन्त्रयामास—"आयाम आनद। वेणुवनम्।"

"एवं इति आनन्द प्रत्युवाच।

अथनिवास्य पात्रचीवरमादाय सार्ध तेन संघेन अनुगम्यमान भगवान् प्रक्रान्तो वृज्जिते पु वेणु वने (वेणु ग्राम के)।

अशृणोत खलु विशतयो (१) नाम ब्राह्मण-वृद्धः किल सर्वेन सघेन सार्ध उपसक्रान्तोस्मिन एव वेणुवने। अथ सोऽचिंतयत्—"अय खलु श्रमणोगौतम, तस्य गुण चतुर्दिक्षु श्रूयते दशलक्षण परिपूर्ण। स इम लोकं सदेवकं समारक स ब्रह्मक स श्रमण ब्राह्मणों प्रजा स्वय साक्षात्कृत्य धर्म दिशति आदिकल्याण मध्यकल्यान पर्यवसान कल्याण सार्थं सव्यजनं गभीर केवल परिपूर्ण ब्रह्मचर्य प्रकाशयति साधु खलु पुन तथा रूपाणा अर्हतां दर्शन भवति। अथ स ब्राह्मण यत्र वेणुवन तत्र उपसक्रमत। उपसक्रम्य भगवन्तं अभिवाद्य एकमन्त न्यपीदत्। भगवान् आनुपूर्व्येण तस्मै धर्म अदिशन् सम-दर्शयन् सप्रहर्षयत्। ब्राह्मणश्च हृष्ट तुष्टो भगवन्त न्यमत्रयत्—"अधिवासयतु मे

गृहे भगवान् श्वस्तनाय भक्ताय सार्धं भिक्षुसंघेन ।" अध्यवासयद् बुद्ध तूष्णीभावेन । अथ खलु ब्राह्मणो भगवतोऽधिवासनं विदित्वा उत्थाय आसनाद् भगवन्त अभिवाद्य प्रदक्षिण कृत्वा प्राक्रमत् ।

अथ खलु ब्राह्मण तस्या रात्रो खादनीय भक्त प्रतिपाद्य काल आरोचयामास— "कालो भदन्त ! निष्ठित भक्त यस्येदानीं भगवान (आर्य) काल मन्यते ।"

अथ भगवान् निवास्य पात्र-चीवर आदाय भिक्षु संघेन परिवारित उपसक्रमत् तस्य निवेशन उपादाय आसन च न्यषीदत् । अथ खलु ब्राह्मणो बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ नानाविधेन प्रणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन समतर्पयन् । भुक्त भोजने प्रक्षालित पात्रपाणौ (भगवति) अन्यतर नीच आसन गृहीत्वा बुद्धस्य पुरता न्यषीदत् । अथ भगवान त ब्राह्मण गाथाभिरध्यभाषत—

सचेत करोति अन्नपान चीन शयनीयवस्तु ।
ददाति शीलवद्भ्योनरेभ्य तेन लभत महाफलम् ॥ १२ ॥
तस्माद् वपन् कुशल परलोक परिभोगाय ।
पुण्य अस्ति [illegible] सत्त्वाना आरक्षायै ॥ १३ ॥
एतत् अस्ति [illegible] आरक्षणं च निर्भयम् ।
नास्ति [illegible] स्वर्गेषु जायते ॥ १४ ॥

[illegible] (भगवान) उत्थाय आसनात् प्राक्रमत् ।

[illegible] (आनन्द) [illegible] । बुद्ध [illegible] आमन्त्र [illegible] शालायाम् ।"

[illegible]

अथ ते भिक्षव लब्ध्वाऽनुज्ञा प्रक्रान्ता । बुद्ध एव केवल सार्धं आनन्देन ग्रीष्माणा (वर्षाणां) कालेऽवसत् । मध्ये ग्रीष्म बुद्धस्य काये खर आबाध उपागच्छत्, सर्वस्मिन काये बाढा वेदना । अथ खलु भगवत एतद् अभूत्–"अह इदानीं आबाधित सर्वस्मिन काये (मे) बाढा वेदना, श्रावकाश्च इह, न मे खलु एतत् प्रतिरूपयोऽह अनामन्त्र्य उपस्थाकान् अनवलोक्य भिक्षुसघ परिनिर्वायेयम् । यन्नून अह इमा आबाध वीर्येण प्रतिप्रणाम्य जीवित सस्कार अधिष्ठाय विहरेय" इति ।

अथ भगवान् विहारात् निष्क्रम्य प्रच्छायाया न्यषीदत् । अथ आनन्दो दृष्ट्वा बुद्ध उपसक्रम्य एतदवोचत्—।

"दृष्टो मे भदन्त भगवत प्राशु सुख तु स्तोक आहत इव भवति ।" पुनरपि आनन्दोऽवोचत="अपि च मे भन्ते ! मधुरकजात इव कायो, दिशापि न में प्रख्यायन्ते, धर्मा अपि मे न प्रतिभान्ति भगवतो ग्लानतया । अपि च मे भन्ते ! अभूत काचिद् आश्वासमात्र–न तावत भगवान परिनिर्वास्यति । लोकचक्षुर्न निरोत्स्यति महाधर्मोन विनक्ष्यति, यावत् न भगवान् भिक्षुसघ आरभ्य किंचिदेव उदाहरति । " बुद्ध आनन्द उवाच="किं पुन आनन्द भिक्षुसघो मयि प्रत्याशसति ? यस्य पुन आनन्द एवं स्यात अह भिक्षु सघ परिधारयामि इति वा ममोद्देशिको भिक्षुसघ इति वा स नू नं आनन्द भिक्षुसघ आरभ्य किंचिदेव उदाहरेत् । तथागतस्य खलु आनन्द- एव न भवति' अह भिक्षुसघ परिधारयामि । किं आनन्द' तथागतो भिक्षुसघ आरभ्य किंचिदेव उदाहरिष्यति देशित आनन्द ! मयाधर्मो ऽ नतर अवाह्य कृत्वा । नास्ति आनद' ! तथा गतस्य धर्मेषु आचार्यमुष्टि । अह खलु पुन. आनन्द ! एतर्हि जीर्णो वृद्धो महल्लकोऽध्वगतो वयोऽनुप्राप्त आशितिक मे वयो वर्तते । तद् यथाऽपि आनन्द ! जर्जरशकट उपायेन वेधमिश्रकेन याप्यते एवमेव खलु आनन्द । वेधमिश्रकेन मन्ये तथा गतस्य कायो याप्यते । यस्मिन् आनन्द ! समये तथा गत सर्वनिमित्ताना अमनसिकारात् एकत्याना वेदनाना निरोधाद् अनिमित्त चेत समाधि उपसम्पद्य विहरति, प्राशुतर आनन्द ! तस्मिन् समये में कायो भवति । तस्माद् ही आनन्द ! आत्मद्वीपाविहरथ आत्मशरणा अनन्यशरणा धर्म द्वीपा धर्मशरणा अनन्यशरणा । कथ च आनन्द ! भिक्षुरात्मद्वीपो विहरति धर्मद्वीपोऽनन्यद्वीप ? आत्मशरणो ऽ धर्मशरणो नन्यशरण ? आनन्दभिक्षु काये

कायानुपश्यी विहरति। आतापी सम्प्रजानन् स्मृतिमान् विनीय लोकेऽभिध्यदोर्मनस्य वेदनासु ० चित्तेषु ० धर्मेषु धर्मानुपश्यी विहरति ०। एवं खलु आनन्द ! भिक्षुरात्म-द्वीपो ०। ये केचिद् आनन्द ! (भिक्षव) एतर्हि वा मा अत्ययेन आत्मद्वीपा विहरिष्यन्ति अनन्यशरणा धर्म द्वीपा धर्मशरणा अनन्यशरणा भावयितार नमतग्रा मे ते आनन्द ! भिक्षवो भविष्यन्ति ये केचित शिक्षाकामा इति।"

अथ खलु भगवान् अवोचत्="आनन्द ! गच्छाव चापालचैत्य।"

"एवं भन्ते," प्रत्युवाच।

अथ तथागत उत्थायनिवास्य पात्रचीवर आदाय गत्वा एकस्मिन वृक्षमूलेऽवोचत् प्रसारयआनन्द। न्यपीदन पृष्ठ मे ग्लायते, इच्छामि इहस्थातुम्

"एव" इति प्रत्युवाच आनन्द ! अथक्षिप्र स प्रज्ञापयामास निपीदनम, तथागतश्च प्रज्ञप्त आसने न्यपीदन्। अथ आनन्द एक क्षुद्रक निपीदन आस्तीर्य बुद्धस्य पुरत उपाविशन्। बुद्धोऽवोचत्

यस्य कस्यचिद् आनन्द ! चत्वार ऋद्धिपादा भाविता बहुलिकृता परिचिता सुसमारब्धा समाहिता स आकाङ्क्षमाण कल्प वा तिष्ठेत् कल्पावशेष वा। बुद्धस्य खलु आनन्द। चत्वार ऋद्धिपादा भाविता आकाङ्क्षमाण आनन्द ! तथागत कल्प वा तिष्ठेत कल्पावशेप वा बहुजनहिताय बहुजनसुखाय अर्थाय हिताय देव मनुष्याणाम। तस्मिन क्षण आनन्द तुष्णीं अभूत् न प्रत्यवोचत्।

द्वितीयमपि ० तृतीयमपि बुद्धोऽवोचत् "यस्य कस्यचिद् आनन्द ! चत्वार ऋद्धिपादा ००। पुनश्च तुष्णीं अभूत यथा स मारेण पर्युत्थित चित परिहीनो न ज्ञातवान् बुद्ध त्रि निमित्तानि प्रकाशयन् न च स प्रतिवेधितु शक्त। बुद्धस्य वचनम्-

अथ आनन्दो बुद्धस्य अनुज्ञां [illegible] आसनाद् अभिवाद्य बुद्धस्य [illegible] [illegible] विविक्त चिन्तयमान।

स्वक आचार्यकं उदगृह्य आचक्षिष्याति देक्ष्यति प्रज्ञापयिष्यति प्रस्थापयिष्यति विवरिष्यति विभजिष्यंति उत्तानीकरिष्यन्ति उत्पन्न परप्रवाद सह धर्मेण सुनिगृहीत निगृह्य सप्रातिहार्यं धर्मं देक्ष्यति" "एतर्हि खलु पुन भन्ते ! भिक्षवो भगवत श्रावका व्यक्ता०। भाषिता च खलु पुन भन्ते ! भगवता एषा वाचा" न तावद् अह पाप्मन् ! निर्वास्यामी यावत मे भिक्षुण्य न श्राविका ०। ० उपासका न श्रावका ०। ० उपासिका न श्राविका भविष्यन्ति व्यक्ता ०। एतर्हि खलु भन्ते। उपासिका भगवत श्राविका व्यक्ता ० धर्मानुधर्मं प्रतिपन्ना ब्रह्मचर्यं दिशन्ति सर्वेभ्यो देव मनुष्येभ्य सप्रातिहार्यम् ।"

पुनश्च अवोचत मार पाप्मा "एकदा बुद्ध उरूवेलाया नद्या नैरजनाया तीरे अजपाल न्यग्रोध वृक्षमूले विहरति प्रथमाभिसंबुद्ध । तस्मिन् कालेऽहं उपसक्रम्य भगवत सन्तिकेऽवोच ""परिनिर्वातु तथागत, परिनिर्वाणकाल इदानीं क्षिप्र परिनिर्वातु ! तस्मिन् काले तथागतो। मामऽवोचत् तिष्ठ तिष्ठ पाप्मन् ! स्वय अह जानामि काल, तथागत इदानीं न परिनिर्वास्यति, यावत् ०। एतर्हि सम्यक् काल, कथ न परिनिर्वाति ?

एव उक्ते बुद्धो ऽवोचत— "तिष्ट तिष्ट पाप्मन् ! बुद्ध स्वय जानाति काल, न चिरेण एव, इत त्रयाण मासाना अत्ययेन पूर्वोत्पादस्थाने कुशीनगरे शालवने यमक शालयो परिनिर्वास्यति।" अथ मारो ऽचिन्तयत्— "न भवति बुद्धाना ऽमोघ वचन, एतर्हि अवश्य परिनिर्वास्यतीति हृष्टतुष्टो ऽन्तर्धाये च प्रक्रान्त ।

अथ बुद्ध चापाल चैत्ये स्मरन् सम्प्रजानन आयु सस्कारं विससर्ज। तस्मिश्च काले महा भूमी चालो ऽभूत देशे मुनुष्याण न को ऽपि अभीत । हस्तेन चीवर निरास्य बुद्ध प्रादर्शयत् महाज्योति यत्र ज्योतिषि मान्धकारलेश तत्र न कस्यापि अलाभ प्रकाशस्य सर्वे ऽलभन्त द्रष्टु ज्योति । तस्मिन् काले भगवान उदान उदानयाचकार—

सस्कृता सस्कृतयो क्रियया सस्कारमिदानीं अवासृजम् ।
अध्यात्मरत समाहित पक्षी यथा निर्गत ॥ १५ ॥

अथ खलु आर्यस्य आनन्दस्य काये लोमहर्षो जात । स शीघ्र भगवत सतिके उपसक्रम्य शिरसा ऽभिवाद्य पादौ एक मन्त स्थित्वा बुद्ध अवोचत्— "आश्चर्यं भगवन् ! भूमिचाल एतादश । को नु अस्य हेतु (को नु) प्रत्यय ?

बुद्धो ऽ वोचत्— "इह खलु आनन्द ! अष्टौ हेतु प्रत्यया लोके भूमिचालस्य। कतमें ऽ ष्टौ ? (१) इयं पृथिवी उदके प्रतिष्ठिता, उदकं वाते प्रतिष्ठितं वात आकाशस्थो भवति, भवति आकाशश्च महावाते, यदा महावात स्वयं कम्पते, अथ उदकं कम्पते, उदकं कम्पितं सर्वा पृथिवीं कम्पयति। अयं अस्ति प्रथम हेतु प्रत्यय । (२) पुनश्चापर आनन्द ! भिक्षुर्वा भिक्षुणि वा मार्गप्राप्त ऋद्धिमान् चेतोवशित्वप्राप्त देवो वा महानुभाव तस्य च परीत्ता पृथिवीसंज्ञा भाविता भवति अप्रमाणा च अप्रमस्या, स इच्छति आत्मनो बलं संपरीक्षितु तदा सर्वा पृथिवी कम्पते। अयं अस्ति द्वितीय । (३) पुश्चापर आनन्द। बोधिसत्व तुषितात् कायात् च्यवित्वा स्मरन् संप्रजानन् अमूढो मातृकुक्षौ अवक्रमते, तदा पृथिव्या महाकम्पो भवति। अयं अस्ति तृतीय । (४) पुनश्चापर आनन्द ! यदा बोधिसत्व स्मरन् संप्रजानन् अमुढो मातृकुक्षित दक्षिणपार्श्वात् निष्क्रमति, तदा ०। (५) पुनश्चपार आनन्द ! बोधिसत्व प्रथमा अनुत्तरा सम्यक्संबोधि अभिसंबुध्यति, तदा ०। (६) पुनश्चापर आनन्द ! बुद्ध प्रथमाभिसंबुद्ध अनुत्तर धर्मचक्र प्रवर्तयति येनापि मारेण, देवेन श्रमण ब्राह्मणै, सर्वे देवै लोके मनुष्ये वा अप्रवर्त्यं तदा ०। (७) पुनश्चपर आनन्द ! बुद्धो दिष्ट्वा उपसमाप्य स्मरन् संप्रजानन आयु संस्कार जीवित श्रामना अव स जति, तदा, ०। (८) पुनश्चापर यदा आनन्द ! अनवशेषे निर्वाणधातौ च परिनिर्वाति, तदा पृथिव्या महाकम्पो भवति। अयं अस्ति अष्टम हेतुप्रत्यय इमे खलु अष्टौ हेतु प्रत्यया भूमिचालस्य। तस्मिन काले भगवान गाथामिदं समभाषत

द्विपदोत्तमो बोधिसत्व शतपुण्य लक्षण ।
अवक्रमते मातृकुक्षि भूमिकप ०॥२१॥
दश मासान् मातृकुक्षौ शेते पर्यंके नाग इव ।
यदानिष्क्रमते दक्षिण पार्श्वात् भूमिकंप ० ॥२२॥
कौमार्ये यथा बुद्धो निरोध्य सस्कार वधनम् ।
जित्वा सखेय मलभत मार्गं भूमिकप ० ॥२३॥
प्रवर्तयति धर्मचक्र तत्र मृगदावकानने ।
जित्वा मार मार्गबलेन भूमिकंप ० ॥२४॥
बह्मा याचत मारदेवो 'बुद्ध परिनिर्वात्विति' ।
बुद्धोऽवसृजति जीवित भूमिकप ० ॥२५॥
नरोत्तमो महाविनायक शास्तान्तिमभव क्षीणायु ।
दुष्प्रकम्प्यो लभते (यदा) निर्वाण भूमिकंप ० ॥ २६ ॥
शुद्धाभोऽवदत् प्रत्ययान् भूमिकपस्य ह्यष्टधा ।
अय चान्यश्च भवति भूमिकपस्तदा भवेत् ॥ २७ ॥*

अथ खलु बुद्धोऽवोचत्—अष्टौ खलु इमा आनन्द ! परिषद कतमा अष्टौ ? (१) प्रथमा क्षत्रीयपरिषद् (२) द्वितीया ब्राह्मण-परिषद् (३) तरतीया ग्रहपति-परिषद्, (४) चतुर्थी श्रमण-परिषद् (५) पचमी चातुर्महाराजिक परिषद् (६) षष्ठीत्रायस्त्रिश परिषद (७) सप्तमी मार परिषद्, (८) ब्रह्मदेव परिषद् । अभिजानामि खलु पुन अह आनन्द ! क्षत्रियपरिषद उपसक्रान्त तत्रापि मया सन्निपण्णपूर्वं चैव सल्लपितपूर्वञ्च साक्षात् च समापादित पूर्वम् । तत्र यद्दशेक तेषां वर्णो भवति स्वरो भवति तत श्रेष्ठतरा मेव स्वरो भवति । ते स्वागतवचनेन माँ विसर्जयन्ति नचाहं व स्वागवचनेनताम् । ते यथा भाषन्ते, अह च तथा भाषितु शक्नोमि । अह आनन्द ! धर्मयार कथया तान् सम दर्शयं समादपय सप्राहर्षयम् । अथ तेभ्य अन्तर धाम । ते न जानन्ति-"को नु खलु अय देवो वा मनुष्यो वा" इति । एव यावत् पेय्याल-ब्रह्म परिषद उपसक्रान्त असख्येयाम् ०

* (बुद्धभाषिते दीर्घाग द्वितीयो भाग " यहा लिखा है प्रथम सूत्र "महाप्रदान सूत्र" के साथ प्रथम भाग समाप्त हुआ था) ।

अथ भगवान् अवोचत्— "एव सूक्ष्म सुन्दरो दुर्लभो आश्चर्याद्भुतापूर्वो-धर्म । तथागत एव अल अधिगन्तु इम धर्मम् ।

पुनश्चावोचत् बुद्ध –"तथागत आनन्द ! सजानिते वेदनानामुदय स्थितिं निरोधच, सञ्ज्ञाना० स्पर्शाना अय च तथागतस्य आश्चर्याद्-भुता पूर्वो धर्म वेदना च वो भावयितव्या ।"

अथ भगवान् अवोचत्–"आयाव आनन्द ! गधचैत्य–कूटागारशालाया । एव भन्ते ।" तत्र च गत्वा (भगवान्) एकस्मिन् वृक्षमूले प्रज्ञप्त आसने न्यषीदत् ।

अथ बुद्धोऽवोचत–"गच्छ त्व आनन्द ! यावन्तो भिक्षव गध चैत्यस्य दक्षिण तो वामतो वा विहरन्ति तान् सर्वान्, भिक्षुन् उपस्थानशालाया सन्निपातय । अथ आनन्द "एव मिति प्रति श्रुत्य सर्वान् भिक्षू उपस्थान शालाया सान्नपात्य-बुद्ध एतद् अवोचत–"सन्निपतितो भन्ते ! महासघ , यस्य इदानीं आर्य काल मन्यते ।"

अथ खलु [illegible] भगवान उपस्थानशालाया उपसक्रम्य प्रज्ञप्त आसने न्यषीदत् अवोचत च "इमे वो भिक्षव ये मया धर्मा अभिज्ञाय देशिता । ये च धमा मया स्वय साक्षात्कृत्य आर्यां सम्यक्सबोधिं अभिसबुद्धा ते ही नाम–चत्वारि स्मृति प्रस्थानानि चत्वारी सम्यक्प्रधानानि, चत्वार ऋद्धिपाद। पच इन्द्रियाणि, पच बलानि, सप्त बोध्यगानि, आर्योष्टागिको मार्ग । इमे खलु धर्मा व साधुक -द्गृहीतव्यना आसेवयितव्या बहुलीकर्तव्या । अनुत्पाद्य विवाद समानाचारै [illegible] तत्र मम धर्म [illegible] मतो यथिगमाय अन्योन्य [illegible] । [illegible] स्वय मानात्कृत्य देशिता ? [illegible] गाथा [illegible], (धर्मपद)

[illegible] अद्भुत धत न पूर्व [illegible]

[illegible] में लिया है 'बुद्धभाषिते [illegible] कृतेन बुद्ध [illegible]) [illegible] ।

पुनश्च पाप्मा अवोचत— "एकदा बुद्ध उरुवैलाया नद्या नैरंजनाया स्तीरे अजपालन्यग्रोध वृक्षमूले विहरति प्रथमाभिसंबुद्ध ०[1]। कथ न परिनिर्वाति ? तस्मिन काले तथागतोऽवोचत्— "तिष्ठ तिष्ठ पाप्मन्! अहं स्वयं जानामि कालं, न चिरेणैव इत त्रयाणं मसानां अत्ययेन परिनिर्वास्यति।" अथ मारो०[2] हृष्टतुष्टोऽन्तर्धार्य प्रक्रान्त अचिरप्रकान्ते च मारेऽह तदा तत्र चापालचैत्ये० आयु संस्कार व्यसृज तस्मिंश्च काले महाभूमिचालोऽभूत ।०। तस्मिन् काले इद उदान उदानयम्[3]

अथ आयुष्मान् आनंद उत्थाय आसनाद् दक्षिणांस उत्तरासंघ कृत्वा दक्षिण जानु मंडल भूमौ प्रतिष्ठाप्य दीर्घं प्रणिपत्य अंजलिं बुद्ध अवोचत्—

"तिष्ठतु भन्ते! भगवान कल्प मा परिनिर्वातु सर्वसत्व हिताय हिताय देवमनुष्याणाद्मति। भगवान तुष्णीं न प्रत्युवाच। एव(आनन्द)यावत् तृतीय बुद्ध अवोचत्। अथ बुद्ध आनन्द अवोचत— "श्रद्दधासित्व आनन्द। तथागतस्य बोधिं न वेत्ति।

"एव भन्ते! सत्य श्रद्दधामि।"

बुद्धोऽवोचत— "श्रद्दधासि तर्हि किं यावत तृतीयक अभिनीर्पीडयसि ?"

समुदान मे एतद् भन्ते! बुद्धस्य श्रुत सम्मुखाद् बुद्धस्य गृहित— यस्य कस्यचिद आनन्द! चत्वार ऋद्धि पादा भाविता बहुलिकृता परिचिता सुसमारब्धा समाहिता स आकांक्षमाण कल्पवा निष्ठेत कल्पावशेष वा। तिष्ठतु भन्ते! भगवान तमो विनाशाय बहुजन हिताय हिताय लाभाय देवमनुष्याणां।"

त्व तथागत स्ववचन विप्रतीप करोतु। नैतत् स्थान विद्यते। यथा कश्चित् आढ्योत्तमो मल्लक भुक्त भुमौ वमेत, सद्यति स तत् भुक्त परावर्त्य पुन भक्षितुम ?"

"नैव भन्ते !" इति प्रत्यूवाच आनन्द ।

"तथागतोऽपि अवसृष्ट वान्त भोजन इव कथ तत् वचन परावर्तयितु शद्यति ?"

पुनरपि बुद्धऽवोचत्— "आयाव अनन्द ! आम्र ग्रामम्"

अथ ससमेत्य पात्रचीवरं महता संघेनानुगम्यमान भगवान वृज्जिपु प्रक्रान्त येन आम्रग्राम तत्रावासरत् तत्र च विहरति एकस्मिन् गिरिवने। तत्रापि भगवान सर्वां परिषद दिशति— "इति शील, इति समाधि, इति प्रज्ञा। शीलपरिभाविता समाधि महाफला भवति महानृशसा, समाधिपरिभाविता प्रज्ञा महाफला भवति महानृशसा, प्रज्ञा परिभावितं चित सम्यगेव आस्रवै· विमुच्यते(आस्रवा) तद्यथा,कामास्रवा भावास्रवा दृष्टयास्रवा । अविद्यास्रवा विमुक्ति लाभाद् जायते विभुक्ति ज्ञान, क्षीणा जाती मृत्युश्च, उषित ब्रह्मचर्यं, कृतं करणीय तेन स न लभते पुनर्भवम् ।"

अथ खलु आम्रग्रामे यथाभिरक्त विहृत्य भगवान् अवोचत्— आयाव आनन्द ! जम्बूग्राम ।०।० ? हस्तिग्राम ०।० पो-लो-पो (वेणुव) ग्रामं ०।० भोगनगरम् ।

अथ भगवान् निवास्य पात्रचीवर आदाय महता सघेन अनुगम्य मानो येन स नितम ❀ तत्रोपसृत्य भोगनगरस्य उतरत शिंशपावने विहरति। तत्रखलु बुद्धो भिक्षून आमत्रयामास—

"दैद्यामि वो भिक्षव ! चतुरो महाप्रदेशान् धर्मान् तान् शृण्वन्तु साधु मनसि कुर्वन्तु ।"

"एव भगवन्" इति ते भिक्षव प्रत्यवोचत्। . ।

"कतमे चत्वार ? (१) इह भिक्षव ! भिक्षुर्वदेत् अह आर्या ! अमुकस्मिन् नगरे, अमुकस्मिन् ग्रामे, अमुकस्मिन राष्ट्रे सम्मुखाद् बुद्धस्य एतत् श्रुत, सम्मुखाद् प्रतिगृहीत-अय धर्म अय विनय इद शासनम्।

❀ पाली में आनद-चैत्य ।

एतत् श्रुत्वा न अभिनन्दितव्यं न प्रतिक्रोशितव्यम्। तस्य सत्यासत्यपरिज्ञार्थं आद्यन्ततो तच्च सूत्रे विनये धर्मे च अवतारयितव्यम्। तत् चैत् न सूत्रे न विनये न धर्मे वतरति तर्हि तस्मै वक्तव्य— "इद न बुद्धस्य भापित, युष्माकमेव दुर्गृहितम्। तत् किं निश्चित्य ? उक्तपूर्वं धर्मेण विरुध्यति। युष्माभिश्च आयुष्मन् ? (आर्यपुरुष) न एतत् सुगृहीत न प्रतिपन्नम्। मा वदतु एतत् मनुष्येभ्य, त्यक्तव्यहीदम्। तच्चेत् तस्य वचन सूत्रे विनये धर्मे च अवतिर्यते, तर्हि तस्मै वक्तव्य— युष्माक इद वचन सत्य, बुद्धेन इद दिष्टम। तत् किं निश्चित्य ? युष्माभि भापितपूर्वं इद वचन सूत्रे विनये धर्मे च अवतरति। एतद् आयुष्मन ! युष्माभि उद्गृहीतव्य प्रतिपत्तव्य मनुष्येपु विस्तारयितव्य भापितव्य न परित्यक्तव्यम अयमस्ति प्रथमो महाप्रदेशो धर्मस्य। (२) पुनश्चापर भिक्षुरेव वदेत—"अमुकस्मिन ग्रामे अमुकस्मिन नगरे अमुकस्मिन जनपदे सघो विहरति सार्धं बहुश्रुतैं स्थविरैं। तस्य सम्मुखाद् इद श्रुत सम्मुखात प्रतिगृहीत— अय धर्म ०। अयमस्ति द्वितीय महाप्रदेशो धर्मस्य। (३) पुनश्चापर— भिक्षुरेव वदेत— "भिक्षवो विहरन्ति धर्मधरा विनमधारा विनयकर्मधारा। तेपा मे सम्मुखाद् इद श्रुत ०। सूत्रे विनये धर्मेच न अवतरति। अथ तस्मै वक्तव्य"— मा कथयन्तु इद दुश्रुत व भवद्भ्यो भिक्षुभ्यो दुर्गहीतम ।०। (४) पुनश्चापर— भिक्षुरेव वदन— अमुकस्मिन ग्रामे० एक स्थविरा (भिक्षु) विहरति धर्मधरा विनयधरा विनयकर्मधर तस्य मे सम्मुखाद् इद श्रत ०। अयमस्ति चतुर्थो महाप्रदेशो धर्मस्य।

अथ खलु भगवान भोग नगर यथाभिरक्त विहृत्य आर्यं आनन्द आमन्त्रयामास 'आयाम आनन्द पावानगरम्'
एवं भन्ते ! इति प्रत्यश्रौषीत्

अथ खलु चुन्द कर्मारपुत्र वस्त्र निवास्य भगवन्त उपसक्रम्य शिरसा पादौ अभिवाद्य एकमन्त, न्यषीदत्। बुद्ध चुंद कर्मारपुत्रं आनुपुर्व्येण धर्म्यया कथया समदर्शयत् समादपयत् समुदतेजयत् सप्राहर्षयत। अथ खलु चुदो भगवतो देशनया धर्मे प्रसन्न सप्रहर्षितो भगवन्त एतद् अवोचत "अधिवासयतु में भन्ते। श्वस्तन भक्तं सार्धं भिक्षुमघेन।" अधिवासयाञ्चकार भगवान् तूष्णीभावेन। अथ खलु चुन्द कर्मारपुत्रो भगवतोऽधिवासन विदित्वा उत्थाय आसनात् बुद्ध अभिवाद्य प्रक्रान्त।

अथ खलुचुद तस्या रात्रो श्वस्तन खादनीय भोजनीय प्रतिपाद्य भगवन्त उपसक्रम्य काल आरोचयामास—"निष्ठित भक्त यस्येदानीं आर्य काल मन्यते।"

अथ भगवान् निवास्य पात्रचीवरं आदाय महता भिक्षुसंघेन अनुगम्यमान तस्य गेह उपसक्रम्य प्रज्ञप्त आसनेन्यषीदत्। अथ चुद. कर्मारपुत्र ओदन त्रिवर्षशुकर-मार्दव लोके दुर्लभ भोजन बुद्धाय संघाय च पर्यवेशयत्। बुद्धोऽवचोत चुन्द—"मा-परिवेशय इदं मार्दवं भिक्षुभ्य।" चुन्द प्राप्य बुद्धस्य आज्ञां तेभ्यो तत् न प्रत्य-पादयत्। अथ तस्मिन् संघ एको भवति महल्लको भिक्षु अगारात् वृद्ध प्रव्रजित स आसनस्योपरि(निषण्ण)पात्रेणमार्दव अपिवत्। अथ चुद भुक्तेपु सर्वेपु पात्रतोऽपनीत-पाणिपु स्वच्छ प्रक्षालनीय जल अदात बुद्ध च गाथयाऽपृच्छत—पृच्छामि महाप्रज्ञ सबुद्ध द्विपदोत्तमम्।

कुशल सारथिन उत्तम वशिन "लोके श्रमणा भवन्ति के॥ ३३ (६) १

अथ भगवान् गाथाभि प्रत्युवाच—

यथा त्व पृच्छसीमे, श्रमणा संति चतुर्विधा।
अधिमुक्तिर्न समा तेपा भेदस्तेषा तु ज्ञायताम्॥ ३४॥ (७)।
एको भावयते मार्गमुत्तम द्वितीय सुदैशिको तदर्थस्य।
तृतीयो मार्गानुगो विहरति, चतुर्थो मार्ग मलिनीकरोति॥ ३५॥ (८)।
मार्गो ह्यनुत्तरो लब्ध सुदिष्ट तेन मार्गार्थे।
अनुवसति मार्गे त्यो मार्गे मलकर॥ ३६॥ (९)।
भोक्ता दहति कटक प्रविशति निर्वाण तीर्णविचिकित्स।
उतिष्ठेते देवमनुष्यहिते दिशतिमार्गमिममनुत्तमम्॥ ३७॥ (१०)।
स्वाख्यात प्रथम कर्म विमल मार्गदेशनम्।
कारुण्येन विनोदित सदेहोऽय स्वाख्यातो मार्ग॥ ३८॥ (११)।

सुव्याकृत धर्मपद मार्गमनुआति स्वाजीवार्थं ।
दूराद् अपश्यत संदेहस्थान मार्गानुगाऽऽजीवा नाम ॥ ३९ ॥ (१२) ।
अन्त तिष्ठति दुष्टता बहि शुक्लो विशुद्ध इव ।
मिथ्या न सत्य अयमस्ति मार्गमलकर ॥ ४० ॥ (१३) ।
योऽस्ति कुशलोऽकुशल । शुद्धश्चा शुद्ध एव वा ।
दृश्यते सुदरो वहि, ताम्रमिव स्वर्णाक्तम ॥ ४१ ॥ (१४) ।
पृथग्जना शसति त न त्यजति श्रद्धामलम् ॥ ४२ ॥ (१५) ।
पुरुष कोऽपि सघधरोऽन्त कलुषो वहि शुद्ध ।
दर्शयते दुष्टपदचिन्ह वस्तु च निदधात्यनवधानम ॥ ४३ ॥ (१६) ।
न पश्येद् वाह्य रूप पश्यति तत्त्वण समन्यते ।
दर्शयति कुहना मिथ्या पदचिन्ह वस्तुतो निदधा मित्यसयमम् ॥४४॥ (१७)

अथ चुन्द कर्मारपुत्र एक नीच आसन आदाय बुद्धस्य पुरतो न्यपीदत्। अथ बुद्ध आनुपूर्व्येण धर्म्यया कथया त सदर्श्य समादाय सप्रहार्य सघेनानुगम्यमान प्रक्रान्त ।

अध खलु भगवान् अन्तरामार्गं एकस्मिन वृक्षमूले स्थित आनन्द आमन्त्रयामास—"खरावेदना पृष्ठे मे जायते, प्रज्ञापय निषीदनम् एव इत्युक्त वा स निषीदन प्रज्ञापयामास ।

भगवान प्रज्ञप्त आसने न्यषीदत्। अथ आनन्दोऽपि एक नीच आसन गृहीत्वा बुद्धस्य पुरतो न्यषीदत् । बुद्धोऽवोचत—

न्यषीदत् । अथ खलु पचमात्राणि शकटशतानि तस्य पार्श्वतोऽतिक्रातीनी शकटनिर्घोष निर्घोषयन्ति, अवलोकितानि तेननतु श्रुतानि । अथ खलु अन्यतर पुरुषो ऽपृच्छत् ममाचार्यं—अपि भन्ते ! इत पचमात्राणि शकटशतानि अतिक्रातानि दृष्टानि भवता ?" "न खलु अपश्य" इति प्रत्युवाच । पुनर पृच्छत्—"श्रुतानि?" "न अशृणव"—इति प्रत्युवाच । पुनरपि स अपृच्छत्- अपि भन्ते ? भवान् इहैव स्थितो अन्यत्र वा ? इहैवस्थित इति प्रत्युवाच पुनर पृच्छत किं भन्ते ! उद्बुद्ध ?"उद्बुद्ध" इति प्रत्युवाच । पुनर पृच्छत-किं सुप्त न सुप्त भु इति प्रत्युवाच । तस्य पुरुषस्य एतद् अभूत्-आश्चर्यं ! अद्भुत भो ! शान्तेन वत भो ! प्रव्रजिता विहारेण विहरन्ति यत्र ही सज्ञी समान । शकटनिर्घोष न पश्येत् न पुन शब्द शृणुयात् । अथ ममाचार्यो-ऽवोश्चत्—"पूर्वे पच मात्राणि शकट शतानि एतेन मार्गेण अतिक्रान्तानि, तथापि न शकट निर्घोष अशृणवम कथ अन्ये ऽश्रणोत् ?

अथ पुल्कसोऽभिवाद्य समोद्य प्रक्रान्त । बुद्ध तदा पुल्कस आमन्त्रयामास तत् किं मन्यतेऽरोज ! कतमन्नु दुष्करतर दुरभिसंभवतर वा यो वा सज्ञी समान अनेकेषा शकटाना निर्घोष न शृणुयात, इत्येतयो कतमन्नु दुष्करतरम ?"

रोजो बुद्ध अवोचत—सहस्र दश सहस्राणि शकटाना निर्घोष स्याश्रवण नव समान स्यात । अपि तु निर्घोषस्या श्रवणेन ! यथा हि स्तोम्या शनिनिर्घोषस्य पृथिव्यारावस्य अश्रवणस्य न श्रवण तत्र अस्ति दुष्करतरम ।"

बुद्धोऽवोचत पुल्कस-एकस्मिन् आतुमाग्रामे विहरामि बुसागारे तदा अकस्मात् वर्षति देवे [illegible] । तस्मिन खलु समये अह बुसागारात् [illegible] । [illegible] पुरुष तस्मात [illegible] मम स्थान उपसंक्रम्य [illegible] । [illegible] न आवोच किन्तु [illegible] भन्ते ! [illegible] ?

[illegible]

तस्मिन् समये पुल्कस शृ गिवर्णं कनकपित दुष्ययुग शत सहस्रार्धं उपनाम्य आसनाद् उत्थाय अञ्जलिं प्रणाम्य बुद्ध अवोचत्—"इद मे भन्ते ! दुष्य भगवान् प्रतिगृह्णातु।"

बुद्धोऽवोचत् पुल्कस—"तेनहि एकेन मां अच्छादय एकेन आनन्दम्।"

अथ पुल्कसो बुद्धस्य आदेश प्रतिगृह्य एकं तथागताय अदाद् एक च आनन्दाय। प्रत्यगृह्णात् च बुद्धोऽनुकपा उपादाय अथ पुल्कसो[1] बुद्धस्य पादौ अभ्यवदत। बुद्ध एक पार्श्वासीन आनुपूर्व्येण धर्मं अदिशत् प्राकाशयत् धर्मनृशसा सप्राहर्षच्च. (तद्) यथा—दानकथा शीलकथा स्वर्गकथा कामानां आदिनव अपकार सक्लेश आस्रवाण निरोध नैष्कम्यस्य आनृशसाम्। यदा बुद्धोरऽज्ञासीत् पुल्कस मल्लपुत्रं कल्यचित्त मृदुचित विनीवरणचित्त प्रसन्नचित अथ बुद्धाना धर्मदेशनाम पुल्कसाय प्रकाशयामास। दु ख आर्यसत्य दु खसमुदयं, दु खनिरोध दु ख निरोध मार्गसत्यं(च)। यथा शुद्ध वस्त्रंसम्यगेव रजन प्रतिगृह्णीयात् एवमेव शुद्ध चित्तस्य पुल्ककसस्य तस्मिन्नेव आसने विरजं वीतमल धर्मचक्षु रूद्पादि–यत्किंचित् समुदय धर्मं सर्वं तद् निरोधधर्मं इति। अथ खलु पुलकस' अविनिपातिकोऽभय प्राप्तो भगवन्त अवोचत् एषोऽह बुद्ध' शरण गच्छामि, धर्मं शरण गच्छामि, सघ शरण गच्छामि, उपासकं मा तथागतो धारयतु अद्यप्रभृति पाण्युपेत यावज्जीव प्राणातिपात विरत अदत्तादानविरत, काम मिथ्याचारविरत, मद्य पान विरत, मृषावादविरत, गृह्णातु मा भगवान् सद्धर्मेउपासकम्।"

पुनश्च स भगवन्त अवोचत्– "यदा च भगवान् चारिका चरमाण पावानगर उपसक्रमेत, उपसक्रमतु में गेहे प्रतिगृह्णातु पान भोजनं शयनासन सूप भैषज्य च भगवते प्रदत्त भवेत। भगवान् कुल(में)उपगच्छतु"। बुद्धोऽवोचत–"साधु ते वचन।"

अथ पुल्कसो भगवता दृष्ट धर्म प्रदर्शित धर्म हृष्ट तुष्ट उत्थाय आसनात् शिरसा भगवत पादौ अभिवाद्य प्रक्रान्त। अचिर प्रक्रान्ते च तस्मिन् आनन्द तत् शृ गिवर्णं दूष्य तथागताय उपनामयामास, प्रत्यगृह्णात् च तथागतोऽनुकपा उपादाय न्यवासयच्च शरीरे। तस्मिन् समये भगवत रूप अत्यन्त पर्यवदात, इन्द्रियाणि परिशुद्धानि मुखवर्णं प्रसन्न। अथ आयुष्मत आनन्दस्य एतद भूत पंचविंशति वत्सरेभ्य उपतिष्ठामि भगवन्त, न मे पूर्वं बुद्धस्य मुखवर्णं एव प्रभाभास्वरे

दुष्ट यथा इदानीम ।" अथ स उत्थाय आसनाद् वाम जानु पृथिव्या निपात्य अञ्जलिं प्रणाम्य बुद्ध अवोचत्—"पचविशतिवर्षेभ्योऽह भगवन्त उपतिष्ठामि न च (मे) पूर्व बुद्धस्य छविवर्ण एव प्रभास्वरो दृष्ट यथा इदानीं न जाने किकारण कोवार्थोऽस्येति श्रोतुकाम ?"

बुद्धोऽवोचत्— "इह आनन्द ! द्वयो कालयो अत्यत तथागतस्य काय पर्यवदातो ऽनन्य साधारण (१) प्रथम काल यदा च बुद्धोऽनुत्तरा सम्यक् सबोधि अभिसबुद्ध (२) द्वितीय काल यदा अनुपादिशेषे निर्वाणे परिनिर्वाति एतयो कालयो आनद ! तथागतस्य वर्ण प्रभास्वर अनन्यसाधारण ।" तस्मिन् (एव) काले भगवान् गाथयाऽध्यभाषत—

शृ गिवर्ण युग मृष्ट पुक्कसो ह्यभ्यहारयन् ।
तेन चाच्छादित शास्ता हैमवर्णोऽप्यशोभत ॥ ४७ ॥ (२०)

अथ खलु बुद्धोऽवोचत्— "इच मे त्व आनन्द पानीय आहर । पिपासितो ऽस्मि ।" आनन्दोऽवोचत्— 'इदानीं भन्ते ! पचमात्राणि शकटशतानि उत्स्रोतो ऽतिक्रातानि, तेन चक्रच्छिन्न उदक आविल अपरिशुद्ध पाद प्रक्षालनीय न तु पानीयम् एव यावत् तृतीय भगवान् अवोचत्— "इच मे त्व आनद ! पानीय आहर पिपासितोऽस्मि '

आनन्दोऽवोचत्— 'इय भन्ते ! ककुत्था नदीऽविदूरेऽच्छोदका शातोदका, [illegible] तत्र भगवान् पानीय च पास्यति गात्राणि च प्रक्षालयिष्यति ।'

तस्मिन् काले [illegible] बुद्ध मार्गेऽपि श्रद्धा प्रसन्ना [illegible] च बुद्धोऽनुकम्पमान [illegible]

)

)

पंचमात्राणि शकटशतानि इतस्रोत परतोर गतानि ।
तैराविल कृतमुदक न पानीय इति बिभेमि ॥५०॥ (२३)
नदी ककुत्सा स्यदति नातिदूर अच्छोदका शीतशुद्धोदका च ।
तत्र गत्वा पानीय भवेत् प्रक्षालनीय च गात्राणाम् ॥५१॥ (२४)
हिमगिरिवासिनी देवताऽथ प्रादात् जल तथागताय ।
पीत्वा जल प्राप्य बल वनेषु सिंहपथाद् अगच्छत् ॥५२॥ (२५)
तस्मिन् जले वसति नागदेव, स्वच्छे शुद्धे नीरजे च ।
आर्यो क्लान्तरूप सगौरव ककुत्साया पारगत ॥५३॥ (२६)

अथ खलु भगवान् ककुत्सा नदीं समुपक्रम्य पीत्वा प्रक्षाल्य गात्रं सघेन सह गच्छन् अध्वान मार्गे प्रतिपन्न एकस्मिन् वृक्षमूले आयुष्मन्त चुन्दक आमन्त्रयाचकार–' इधमे त्वं चतुर्गुणा सघाटीं प्रज्ञापय पृष्ठ मे ग्लायते, निपत्स्यामि ।"

"एवं भन्ते ।" इति प्रतिश्रुत्य आयुष्मान् चुन्दक प्रज्ञापयाचकार सघाटीं, भगवांश्च तस्योपरि न्यषीदत् । आयुष्मान् चुन्दकोऽभिवाद्य एक मन्त निषण्णो बुद्धमवोचत् –"परिनिर्वातुकामोऽह परिनिर्वातुकामोऽऽह ।" बुद्धस्त अवोचत्—"यस्य त्वकाल मन्यसे । अथ भगवान् गाथाभिरवोचत्—

गत्वा हि बुद्धो नदीं ककुत्सा अच्छोदका शातोदकां विप्रसन्नाम् ।
अवगाह्य शास्ता ह्यक्लान्तरूप स्नात्वापर पारमुततार ॥५४॥ (२७)
पुरस्कृतो भिक्षुसघस्य मध्य आमन्त्रयत् चुन्दक नाम भिक्षुम् ।
"अह इदानीमतिक्लान्तरूप त्व क्षिप्र सस्तर ह्यासन में" ॥५५॥ (२८)
आज्ञापित चुन्द (सघाटीं) चतुर्गुणा समास्तरत् क्षिप्रमेव ।
न्यपद्यत शास्ता ह्यक्लान्तरूप चुन्दोऽपि सन्मुखे न्यषीदत् ॥५६॥ (२९)
अथावोचद भगवन्त चुन्दो निर्वातु कामोऽह निर्वाणम् ।
अरागादद्वेष स्थान गमिष्यामह तत् पदम् ॥५७॥ (३०)
असख्येयानाम् पुण्याना नदी पुरुषोऽनुत्तर तमुवाच ।
"कृत ते करणीय जानासीदानीमेतस्य कालम्" ॥५८॥ (३१)
दृष्ट्वा बुद्धस्यापिचासन चुन्दो द्विगुणोत्साहेन ।
विनाश्य निरवशेष सस्कार परिनिर्वृतो यथाग्निर्निर्वृत ॥५९॥ (३२)

अथ आनन्द उत्थाय आसनाद् बुद्ध अवोचत्—

"परिनिर्वृते बुद्धे भगवत शरीरे कथ प्रतिपत्तव्यम्" ? ॥ बुद्ध उवाच— "अव्यावृता भवथ आनन्द ! यूय घटथ स्वीये करणीये । बुद्धे अभिप्रसन्ना जना दृष्ट्वा स्वय तत् करिष्यन्ति ।"

अथ आनन्दो द्वितीयमपि तृतीयमपि अपृच्छत्—"परिनिर्वृत्ते बुद्धे भगवत शरीरे कथ प्रतिपतव्यम् ।"

बुद्धोऽवोचत—बुद्धस्य शरीरे तथा प्रतिपतव्य यथा चक्रवर्तिन आर्यस्य राज्ञ शरीरे ।"

आनन्द पुनरपि अवोचत—"कथ चक्रवर्तिन आर्यस्य शरीरे प्रतिपद्यते ।"

बुद्ध-आनन्द अवोचत्—आर्यस्य राज्ञ शरीर प्रथम सुगन्ध जलेन स्नापयन्ति, तस्य शरीर अहतेन कार्पासेन वेष्टयन्ति बध्नन्ति शरीर पचभिमर्दुग्यशतै । पुनश्चापर वेष्टयित्वा तत् शरीर सुवर्णद्रोण्या तैल परिपूर्णाया प्रक्षिप्य ता सुवर्णद्रोणी प्रक्षिपन्ति द्वितीयस्मा आयस्या द्रोण्या चन्दनकाष्ठाच्छादितायाम् । पुनश्चापर द्विगुणं तद् प्रसिद्ध नाना गन्धकाष्ठै तदुपरिष्टात् प्रच्छाद्य चिताया आदहन्ति । समाप्तौ तस्या शरीराणि चिन्वन्ति चतुर्महापथे स्तूप स्थापयन्ति [illegible] च [illegible]यन्ति । तत्र पान्था धर्म-राजस्य स्तूप दृष्ट्वा चित्त प्रसादयिष्यन्ति सम्यग् उपदेशानो बहुलायिन भविष्यन्ति । एव आनन्द ! [illegible] शरीर मे प्रथम सुगन्ध जलेन स्नपनीय नवेन कार्पासेन तत् परिवेष्टयितव्य बद्धव्य च शरीर पचभिर्दुग्यशतै । पुनश्चापर स्नापयित्वा शरीर सुवर्णद्रोण्या तैलपरिपूर्णायाम् [illegible] सुवर्णद्रोणी द्वितीयस्या [illegible] चन्दनकाष्ठद्रोण्या [illegible] अन्तर्हित द्विगुणा [illegible] उपरिष्टात् आच्छाद्य [illegible] । तत शरीय

तूष्णीं यूय आनन्द ! भवथ चिन्तयथ स्वीय करणीयम् ।
लोका अभिप्रसन्ना स्वय हृष्टा. तत् करिष्यन्ति ॥६१॥ (३४)
आनद पुनरपृच्छत् बुद्ध प्रत्युवाच चक्रवर्तिशवक्रियाम् ।
"तथा प्रतिपत्तव्य तथागत शरीर दुष्यै संवेष्टय द्रोण्या ॥६२॥ (३५)
चतुष्पथे स्थाप्य स्तूप. लाभाय सर्वसत्वानाम् ।
अभिवाद्य जना सर्वे लप्स्यन्तेऽसख्येयानि पुण्यानि ॥६३॥ (३६)

बुद्धोऽवोचत् "चत्वार आनन्द ! पुरुषा लोके स्तूपार्हा गधपुष्पध्वजनृत्यगिताहीं । कतमे चत्वार । (१) प्रथम तथागत. स्तूपार्ह (२) द्वितीय प्रत्येक बुद्ध स्तूपार्ह. (३) तृतीय तथागत श्रावक' (४) चतुर्थ चक्रवर्ती राजा च । इम आनद ! चत्वार पुरुषा स्तुपार्हा गन्धपुष्पनृत्यगिताहीं ।"

तस्मिन् काले भगवान् गाथाभ्या अवोचत्—

"बुद्ध प्रथम स्तूपार्ह प्रत्येक बुद्ध श्रावकश्च ।
आर्यो राजा चक्रवर्ती शास्ता नेता चातुर्दिशस्वामी ॥६४॥ (३७)
इमे चत्वारो दानार्हा इति व्याकरोत् तथागत. ।
बुद्ध प्रत्येक श्रावकौ राजा च चक्रवर्ती स्तूपार्हा ॥६५॥ (३८)

अथ भगवान् अवोचत्—आयाव आनन्द ! कुशी नगरे मल्लानां अन्तरेण कशालयो ।

'एव"—इति प्रत्यूवाच आनन्द' ।

अथ खलु भगवान् महता भिक्षु सघेन सार्धं अध्वानमार्गं प्रतिपन्नो भवति । दा एको ब्राह्मण कुशीनगरात् पावानगर गच्छन् मार्गे दूरतो भगवन्त अभिरूप शान्तेन्द्रिय अपश्यत् । दृष्ट्वा च अभिप्रसन्नचित्त' स्वय उपसंक्रम्य बुद्धस्य सन्तिके अभिवाद्य एकमन्तं निषण्णो बुद्ध अवोचत्—"अहं हि वसामि इतोनातीदूर एकस्मिन् ग्रामे अधिवासयतु मे गौतम ! रात्रिवास, प्रात भक्त परिसमाप्य नगर उपसक्रमतु ।"

बुद्धोऽवोचत–"अल ब्राह्मण ! अल इदानीं ते दानेन निष्ठितो मे भक्त काल ।"

ब्राह्मणो यावत् तृतीय अयाचत । बुद्ध यथापूर्वं प्रत्यवोचत, पुनश्च अवदत् "त्व आनन्द ! पश्चात् ब्राह्मण एन अर्थं वद ।"

अथ ब्राह्मणो बुद्धस्य वचन श्रुत्वा आनन्द उपसक्रम्य अभिवाद्य च एकमन्त स्थितोऽवोचत्—"भन्ते आनन्द ! अह इतो नातिदूर एकस्मिन ग्रामे वसामि, अधिवासयतु गौतम तत्र रात्रिवास प्रात भक्त परिसमाप्य नगर उपसक्रमतु ।"

आनन्द प्रत्युवाच—"अल ब्राह्मण ! अल इदानी ते दानेन । पुनश्च ब्राह्मणो यावत् तृतीय अयाचत । आनन्द प्रत्युवाच—'काल अय ग्रीष्माणा उष्ण ग्रामश्च ते दूरवर्ती, भगवान् हि आक्लान्त न कष्टार्ह ।"

अथ एतमेवार्थं विदित्वा भगवान गाथाभि अवोचत्—

विशुद्ध चित्त पथि उपागान् आक्लान्त यमकशालाभिमुखम् ।
दूराद् अपश्यद् बुद्ध ब्राह्मण क्षिप्रमुपागम्य शिरसाऽभिवदत ॥६६॥ (३९)
इत समीपे ग्रामो मेऽनुकम्पया वसतु एकरात्रम् ।
प्रात करोमि लघुदान अथ तन्नगर प्रयातु ॥६७॥ (४०)
आक्लान्तो ब्राह्मण ! मे शरीर दूर मार्ग न गन्तुमर्हं ।
अवलोक्य भाण्डागारिक पृष्ट्वा त्व वक्तुमर्हसि एनमर्थम् ॥६८॥ (४१)
बुद्धस्याज्ञा प्राप्य स उपागमद् आनन्द सन्तिके ।
अधिवासयतु मे ग्राम गन्तु प्रात भुक्त्वा गच्छतु ॥६९॥ (४२)
उवाचानन्द अलमल ग्रीष्म कालो न गन्तुमर्हं ।
त्रि प्रार्थे निष्फल मनोरथो दुखी दुर्मनाऽभवत् ॥७०॥ (४३)
सान्तरा इमे संस्कृता धर्मा परिवर्तमाना अस्थिरा सदा ।
इदानीं अन्तरा यमकशालायां रजन्या नश्यति मे शरीरम् ॥७१॥ (४४)
[illegible] निर्वाणगामिन ।
[illegible] निरिसानो ॥७२॥ (४५)

भूमौ अकालपुपाणि अवाकिरत। तदा भगवान् अवोचत्— "इय मे आनन्द। यमकशालयो देवताऽ कालपुष्पै पूजयति। न च एतावता तथागतस्य पूजा भवति।"

आनन्दोऽवोचत— यो ही आनन्द। पुरूषो धर्मानुधर्म प्रति पन्नो नुधर्म चारी भवति साहि तेन तथागतस्य पूजा कृता उच्यते।"

आनन्दोऽवोचत् "कथ तर्हिभन्ते। तथागतस्य पूजा भवति"

बुद्धोऽवोचत्— योहि आनन्द। पुरूषो धर्मानुधर्म प्रति पन्नोऽनुधर्म चारि भवति तेन तथा गतस्य पूजा कृता उच्यते।

अथ एनमेव अर्थं विदित्वा बुद्धो गाथाभिरवोचत्—

यमकशालयोर्मध्ये प्रतिसल्लीनो बुद्धोऽकम्पचित्त।
वृत्तदेवता परिशुद्धमानसाऽवाकिरत पुष्पाणि बुद्धस्योपरि ॥७३॥ (४६)
उवाच बुद्ध वचन आनन्दः का तर्हि पूजा।
उपलभ्य धर्ममयाचरेत(यत्)तद् बोधे पुष्प भवति सा पूजा ॥७४॥ (४७)
चक्रोपममरूण पुष्पमाकिर्ण (तेन) न भवति बुद्ध पूजा।
स्कधधात्वायतनानि नात्माऽतो न पूजोच्यते सा ॥७५॥ (४८)

तस्मिन् काले आयुष्मान् उपवानो भगवत पुरत स्थित भवति बुद्धं व्यजमान अथ बुद्ध त अवोचत . . .

"मा मेपुरत तिष्ठ।" आनन्द तुष्णीं स्वयं चिन्तयामास "अयं खलु आयुष्मान् उपवानो दीर्घरात्र बुद्धस्य उपस्थाकः सतिकावचर सत्कारा पेक्षोऽभूत। एतर्हि पश्चिमे काले तथागत सेवातोऽसन्तुष्टोऽपसारयति त सेवात। को हि पुन हेतु कस्मात् एव करोति ?" अथ आनन्द चीवरं ससमेत्य उपसक्रम्य भगवन्त एव अवोचत् . . .

"अयं भन्ते। उपवानो दीर्घरात्र बुद्धस्य उपस्थाक सतिकावचर कोहि हेतु कस्मात् एव करोति।

बुद्धोऽवोचत्—"आनद। कुशीनगरात् समन्तत वाम दक्षिणत यावद् द्वादश योजनानि सर्वत्र महेशाख्या देवता वास परि गृहीतवत्य, नास्ति रिक्तं स्थानं। इमा महेशाख्या देवता उदध्यायन्ति . . . "कथं अयं भिक्षु बुद्धस्य पुरत स्थित। अद्यैव बुद्धोनाचिरेण नर्वास्यति, इच्छामो वय सर्वादेवता(भगवन्त)द्रष्टुम्।

अय तु महेशाख्यो भिक्षु दर्शनं वारयति, नच लभामहे तथागत वदितुम् ।' अयं हेतु आनन्द ! येन अपेहीति मया उक्तम् ।"

"आनदो बुद्ध अवोचत "अनेन भन्ते ? आर्य भिक्षुणा पूर्व किं पुण्य अर्जित किं कर्म आचीर्ण, येनएतर्हि एव महेशाख्योस्ति ।"

"बुद्धोऽवोचत्-एकनवतिकल्पत पूर्व आनन्द ! लोकेऽभूदबुद्ध विपश्यी नाम। तदाऽयम् भिक्षु श्रद्धाप्रसन्न तस्य भगवत चैत्यस्य प्रकाशनाय तृणोल्काहस्तेऽधारयत् । अय हेतु अय प्रत्यय येन अय महेशाख्य आलोकेन व्याप्नोति अष्टविशति देवलोक, नास्य (कोऽपि) समसम देवलोकेषु ।"

अथ आनन्द उत्थाय आसनाद् दक्षिणासविवृत्य एकास उतरासग कृत्वा जानु निपात्य अजलिं कृत्वा बुद्ध एव अवोचत

भन्ते ! मा परिनिर्वातु बुद्ध अस्मिन क्षुद्र के नगर के शाखानगर के उज्जगल के खडिताया भूमौ सतिहि अन्यानि महानगराणि, तद्यथा चम्पा महानगरी, वैशाली नगरी, राजगृह नगर, साकेत नगर, श्रावस्ती नगरी, को शाबी नगरी, वाराणसी नगरी, तत्र वहुजना बुद्धेषधर्मेच अभिप्रसन्ना (ते) बुद्धे परिनिर्वृत बुद्धस्य शरीराणी[२] पूजयिष्यन्ति सत्करिष्यति ।"

बुद्धोऽवोचत "अल अनद ! मा एव वद, मा एव वद इद नगर क्षुद्रक उज्जगलकम। यतो हि भूतपूर्व अस्मिन् नगरे राजा (अभत्) सुदर्शनो [illegible] नाम। तदा इय नगरी कुशावती दैर्घ्येण अशितीयोजनानी विस्तारेण द्विशताशीति योजनानि (अभूत)। तदा (च) इय सुभिक्षा ऋद्धा स्फीता बहुजनाकीर्णा। सप्तभि प्राकारै परिक्षिप्ता एव इय नगरी (अभूत) सप्तविधै शब्दै-आकीर्णा मध्ये तस्या नगर्या च लम्बमाना रत्नघटा [illegible] (अस्य) पोष्कर आ [illegible] निवात [illegible] [illegible] पौरुष [illegible] वेदेन च द्वादश पौरुष नगरस्य उपरि गोपुर [illegible] वेदेन द्वादश पौरुष [illegible] [illegible] पौरुष आयामेन [illegible] सुवर्णमयस्य नगरस्य [illegible] द्वार [illegible] नगरस्य [illegible] द्वार, वैडूर्यमयस्य नगरस्य स्फटिकमय द्वार स्फटिकमयस्य नगरस्य वैडूर्यमय द्वारम् । तस्य नगरस्य [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] यानि तत्र तत्र चत्वारि

[illegible] [illegible] [illegible] महानुस्मृति सूत्र ([illegible]

[illegible] [illegible] है।

रत्नानि उपयुक्तानि। सुवर्णमये रौप्यमयी घटा, रोप्यमये गोपुरे सुवर्णमयी घटा। तस्यरत्नमय्या परिखाया सप्तविधानि कमलानि आरोहन्ति-उत्पलपुष्प, पद्म पुष्प कुमुद पुष्पं पुण्डरीक पुष्प अधस्तात्।

तलेऽस्य नगरस्य सुवर्णवालुका विकीर्णा। उभयो. पार्श्वयो रोपिता तालवृक्षा, येषरां सुवर्णमया स्कन्धा रौप्यमयानि पत्राणि पुष्पाणि फलानी च। रौप्यमयानां वृक्षाणा च सुवर्णमयानि पत्राणि पुष्पाणि फलानि स्फटिक मयाना वृक्षाणां च वैदूर्यमयानि पत्राणि पुष्पाणि फलानि। तालवृक्षाणा मध्ये भवन्ति नाना पुष्करिण्य. शातजला अक्षार परिशुद्धा निर्मला चतुरत्नेष्टकाभि विरचिता मध्ये च स्थापिता सुवर्णनि श्रेण्या रौप्यमय्य पद्धतय रौप्यमृयया नि श्रेण्या सुवर्णे मृय्य पद्धतय वैदूर्यमय्यां नि श्रेण्यां स्फटिकमयी निः श्रेणिवेदिका यथा च पद्धति। परित परिधारिताश्च वेष्टन्य।

"तस्मिन् नगरे सर्वत्र आरोहन्ति तालवृक्षा तत्र सुवर्णमयानां वृक्षाणां रोप्यमयानि पत्राणि पुष्पाणि फलानि च रौप्यमयान वृक्षाण सुवर्णमयानि पत्राणि०, स्फटिकमयानां० वैदुर्यमयानि०। वैदुर्यमयाना० स्फटिकमयानि (पत्राणि) पुष्पाणि फलानि च। वृक्षाणा मध्ये च गवन्ति चतुर्विधा रत्नपुष्करिण्य (यासु) आरोहन्ति चतुर्विधानि पुष्पाणि तस्य नगरस्य रथ्या वीथयश्च सुनिर्मिता। (ताल) पक्तिभ्य वातेरिताभ्य पुष्पाणि मार्गपार्श्वे विकीर्णानि भवन्ति। मन्दः चातुर्दिशो मारुत उत्कम्पयति च रत्नवृक्षान् निर्गमयति च दिव्य सगीतमिव वल्गु स्वरम्।

तस्मिन् नगरे जना स्त्रिय पुरुषा हीना महान्त च सव्रजन्ति आत्मनो मोदाय वृक्षाणा मध्ये। सा च नगरी सदा समन्विता (भवति) शण्व शब्दै. हस्ति शब्दै अश्वशब्दै रथशकै पीवथ-खादथ-क्षीथ शब्दै (इनि) दशभि शब्दै।

"तस्मिन काले राजा महासुदर्शन सप्तभि रत्नै समन्वागत चतसृभि ऋद्धिभि चतुरत राजा भवति। कतमानि तस्य सप्त रत्नानि। (१) प्रथम सुवर्णमय चक्ररत्नं, (२) द्वितीय श्वेत हस्ति-रत्न (३) तृतीय रोहदश्वरत्न, (४) चतुर्थं दिव्यमुक्ता रत्न, (५) पचम अभिरूप स्त्रीरत्न, (६) षष्ठ गृहपतिरत्न (७) सप्तम परिणायकरत्नम्।

(१) कथ च राज्ञ महा सुदर्शनस्य सुवर्णमय चक्ररत्न अभूत्? तदा ही पचदश्या पूर्णमास्या राज्ञ स्नानोपलिप्तस्य सुन्दरीभि परिवारितस्य प्रासादव व रगतस्य चक्ररत्न

प्रादुरभूत सनेमिक सहस्रार भास्वरवर्णपरिपूर्ण देवशिल्पिना कृत वर्णनातीत शुद्धसुवर्णमय परिवेघेन चतुर्दशपौरूपम् । अथ राज्ञा महासुदशनस्य मनसि एव अभूत् श्रुत मया पूर्वं पूर्वजेभ्य वृद्धेभ्य क्षत्रियस्य ही राज्ञ मूर्धाभिषिक्तस्य पञ्चदश्या पूर्णिमाया गधोदक स्नातस्य सुन्दरिभि परिवारितस्य प्रासादवरगतस्य सम्मुखे स्वय सुवर्णमय चक्र यदा प्रादुर्भवति सहस्रार भास्वरवर्ण परिपूर्ण देव शिल्पिना कृत लोकोत्तर परिशुद्ध सुवर्णमय परिवेघेन चतुर्दशपौरूप तदा हि स उच्यते ।

आर्य च राजा चक्रवर्तीति एतर्हि राजा चक्रवर्ती २ यत्र अह शपस्यामि इद चक्ररत्नम् ।"

"अथ राजा महासुदर्शन चतुरगिनीं सेना आमन्त्रयामास-अभि गच्छथ भणे ! चक्र रत्न दक्षिणा संविवृत्य एकास उत्तरा सघ कृत्वा जानु निपात्य भूमौ दक्षिणेन हस्तेन सुवर्णमय चक्र स्पृस्टवा वदथ-चक्रस्य प्राकृत नियमं अनुल्लघ्य अदेशक्रमेण पूर्वाभि मुख प्रवर्त्तताम् ।

अथ परावृत्ति काले राजा सुदर्शन चतुरगिनीं सेना सुवर्णमय चक्ररत्नभि मुख प्रेषयामास । दिव्यनायकस्य चक्रस्य चतु स्थिति प्रदेशेषु राजा रथ स्थापयामास । तस्मिन् काले पूर्वस्या दिशि लघुभूपाला महाराज आयान्त दृष्टवा सौवर्ण मये पात्रे रौप्यतडुल रौप्यमये पात्रे सुवर्णमय तडुल निधाय राज्ञाना उपसगम्य शिरसाऽभिवाद्य अवोचन-स्वागत ते महाराज ! इय श्रद्धा स्फीता बहुजना कीर्णा दशदिगता भूमि, अस्मिन शान्तिमये काले च वय दया वधुतापरवशा भक्ता सदा आज्ञानुवर्तिन भविष्यामि । यथा आर्यो राजा अनुशास्ति न यथा देश यथाकाल तद् वय करिष्याम ।'

राजा महासुदर्शन तान लघु नृपान आह 'अल भद्रजना । [illegible] [illegible] [illegible] न ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] अनु[illegible] मा कुरुथ व्यापार मा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]नुशासनम्

[illegible] आदेश [illegible] [illegible] राज [illegible] [illegible] अनुगच्छन्तो यावत् पूर्वसागर [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पश्चिम दिश उत्तरा दिश च चक्र [illegible] [illegible] [illegible] । [illegible] [illegible]ानीऽपि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

अथ राजा सुदर्शन सुवर्णमय चक्रं अनुगच्छन् यावत चतु समुद्रा सुखेन जनान् अनुशास्य यदा स्वकजनपदे कुशावतीनगर प्रतिनिवृत तदा सुवर्णमय चकरत्न अपि आगत्य प्रासाद द्वारे अर्वाकाशेऽतिष्ठत्। राजा महासुदर्शन हृष्टतुष्ट आह -अद्धा इद मे सुवर्णमय चक्ररत्न शुभ निमित अहं हि एतर्हि सत्य आर्यो राजा चक्रवर्ती(ति) इदमेव अभूत् तस्य सुवर्ण मय चक्ररत्नम्।

(२) कथ पुन. अभूद् राज्ञो महासुदर्शनस्य श्वेत हस्तिरत्न ? तदा राज्ञो महा-सुदर्शनस्य प्रासादवरगतस्य प्रातरेव अभिमुखे सहज हस्तिरत्न-प्रादुरभूत। तस्य केशा सर्वश्वेता सप्तसु स्थानेषु सुप्रतिष्ठित वली विहाय सगम। वर्णांकित तस्य शिर अुद्र सुशिरा जातिसुवर्णपरिपूर्णा षड् दन्ता'। त दृष्ट्वा राजा आह "भद्रक वत मे इद हस्तिरत्न यावत् सुदान्त चेद् अभविष्यत् राजरथे च योजित भवेत्।" अथ स हस्ति दान्त सर्वै· गुणै पुर्णोऽभूत। तदा राजा महासुदर्शन वयं विमृश्य हस्तिन अभिरुह्य पूर्वाह्ण समय नगरात निर्गत्य यावत चतु समुद्र सर्वत्र गत्वा भोजनकाले प्रत्यागत। तदा राजा सुदर्शनो हृष्टतुष्ट एव आह-इद ही मे श्वेत हस्तिरत्नं शुभनिमितम्। सत्यमेव इदानीं अह आर्यो राजा, चक्रवर्ती इद च मे हस्तिरत्नम्।"

(३) कथ राज्ञो महासुदर्शनस्य रोहित अश्वरत्न प्रादुरभूत। राज्ञो महा सुदर्शनस्य प्रासाद वर निशण्णस्य प्रात रेव सहज अश्व रत्न प्रादुर्भूत तस्य अश्वस्य पुरस्तिम भाग रक्तहरितवर्ण पुच्छशिर कठेपुरक्ता केशावलवान् काकवद् विहायसगम' च। अथ राजा त दृष्ट्वा आह-"भद्रकवत इद अश्वरत्न सुदान्त रथेयोजित च अभविष्यत्" अथ स दान्त सर्वे गुणै परिपूर्ण अभवत्। तदा राजा सुदर्शन' स्वय विमृश्य अश्वरत्न समारुह्य पूर्वाह्णसमय नगरात निर्गत्यावन् चतु समुद्र सर्वत्र गत्वा भोजन काले प्रत्यागत। अथ राजा सुदर्शनो हृष्ट तुष्ट आह-"इद हि मे रोहित अश्वरत्न शुभनिमित्त सत्यमेव इदानीं अह आर्यो राजा चक्रवर्ती इद च मे रोहित अश्व रत्नम।

(४) कथ राज्ञो महासुदर्शनस्य दिव्य मुक्तारत्नम् ? राज्ञो महा-सुदर्शस्य प्रासादव-निषण्णस्य अभिमुखे प्रातरेव सहज दिव्य मुक्तारत्न (मणिरत्नं) प्रादुरभूत शुभ्र अच्छ निर्मलम्। अथ राजा तद् दृष्ट्वा आह-"भद्रकावत् इय मुक्ता, मा चेत भास्वरा अन्त, प्रासाद प्राकाशयिष्यत्।' अथ राजा सुदर्शन स्वय विमृश्य चतुरगीनो

सेना सन्नह्य तद् मुक्ता रत्न ध्वजाग्रे समारोप्य रात्र्यधकारे प्रायात। नगराद् वहि त्रिंशद् योजन नगरे च जना तेन मुक्ताभासेन दिवेति कथयन्त कर्मांतानी चक्रु। अथ राजा सुदर्शनो हृष्टतुष्ट आह-"इद मे एतर्हि सहज दिव्य मुक्ता रत्न शुभनिमित सत्यमेव इदानीं अह राजा चक्रवर्ती इद च मे दिव्य मुक्तारत्नम्।"

(५) कथ पुन राज्ञो महासुदर्शनस्य स्त्रीरत्नम्, तदा तस्य स्त्रीरत्न प्रादुरभूद् अभिरूप दर्शनीय प्रासादिक परमया वर्णपुष्कलतया समन्वागतम् नातिदीर्घं नातिह्रस्व नातिस्थूल नातिकृश नात्यवदात नातिकृष्ण नातिकठिन नातिकोमल, शीते तस्या (स्त्रिय) गात्राणि उष्णानि उष्णे गात्राणि शीतानि तस्या कायलोमकूपत चदनगध मुखत उत्पलगध स्वर कोमल गति भद्रा। सा हि राज्ञ पूर्वोत्थायिनी पश्चान्निपातिनी किंकारणवेपिणी। राजा सुदर्शनश्च तस्या परिशुद्ध-चित अरागचित्त, अनासक्तचित। तदा राजा सुदर्शनो हृष्ट तुष्ट एव आह-इद मे एतर्हि सहज स्त्रीरत्न शुभनिमित सत्यमेव इदानीं अह राजा चक्रवर्ती इद च मे स्त्रीरत्नम्।

(६) कथ पुन राज्ञ सुदर्शनस्य गृहपतिरत्नम्? प्रादुर्भूते गृहपतिरत्ने स्वय सहज रत्ननिधान असख्येय धन च प्रादुरभूत। गृहपते कर्मविपाकेन दिव्य चक्षु जात येन पृथिव्या निहित सस्वामिक अस्वामिक च सर्वनिधिं पश्यति, ज्ञात्वा च सस्वामिक परिरक्षति अस्वामिक च उपलभयति राज्ञ उपयोगाय। अथ गृहपतिरत्न राजान उपसक्रम्य आह—"अल्पोत्सुको भव महाराज। देयेपु अह स्वय करणीय करिष्यामि।" अथ राजा सुदर्शन गृहपतिरत्न मीमासमानोऽलकृत्वा नाव आदिश्य जलऽवगाह्य गृहपतिरत्न अवोचत। अर्थो मे गृहपते सुवर्ण निधिना ति। मे देहि।" गृहपति प्रत्युवाच—"तत स्तोक विरमतु तेऽर्थं सुवर्णेन यावत् तट आसादयाम?" राजा च प्रतिवेद्य आह—"अल इदानीमेव अर्थो मे सुवर्णेन तद उपानय। अथ गृहपतिरत्न राजा आदिष्ट नौका आनम्य दक्षिणेन हस्तेन चक्र अवमृश्य

(७) कथं पुन राज्ञो महासुदर्शनस्य परिणायक (सेनापति) रत्नम्। तदा राज्ञ परिणायकरत्न प्रादुरभूत् स च परिणायक पंडित',व्यक्त एकक प्रतिवल विनिश्चेतुम। स राजान उपसङ्क्रम्य एव आह—'सति अभियाने महाराज! अल्पोत्सुको भव। अहं ते करणीय करिष्यामि।' अथ राजा महासुदर्शन परिणायकरत्न मीमांसमान चतुरंगिनीं सेनां आकार्य तं एव आह तेन त्व एतर्हि असंचिता सेनां संगृहाण संचिता च विभजस्व असरलां च सरलां विधेही सरलां च शिथिला विधेहि, आगता च गता च स्थिताम्।" अथ परिणायकरत्न राज्ञो वचन उपश्रुत्य आज्ञाप्य चतुरगिनीं सेनां असंचितां समचिनोत, सचिता व्यभजत असरला स'ल्यकरोत, सरला अशिथिलयत आगतां गता, गता च स्थितां व्यधात। अथ राजा सुदर्शनो हृष्टतुष्ट एव आह—"इद मे सहज परिणायकरत्न शुभनिर्मित सत्यमेव इदानीं अह आर्यो राजा चक्रवती। इद च मेऽस्ति परिणायकरत्नम्।

"एतानी आनद! आर्यस्य राज्ञ' चकवर्तिन सुदर्शनस्य सप्त रत्नानि।

"का पुन सति तस्य चतस्रो ऋद्धय? (१) स राजा सुदर्शन अभूत दीर्घायु नाकाले मरणधर्मा अन्यै. असमसम' (२) कायेन स वलवान् अनाबाधिक अन्यै असमसम। (३) स अभूत अभिरुपो दर्शनीय' अन्यै असमसम (४) तस्य कोशागार परिपूर्ण पर्यापन्न अन्यै असमसम्।

"इमानी भवन्ति आर्यस्य राज्ञ' चक्रवर्तिनः सप्त रत्नानि चतस्रश्च ऋद्धय।" "राजा आनद! सुदर्शन तदा रथेन उद्यान गन्तु आमन्त्र्य सारथिं अवोचत्-साधुक त्व रथ नय सेखेन गमनाय।' तत् कस्मात्? यथा अह सुखेन चिरतंर जनपदजमान् पश्येय मा च जनपदजना कष्टेन मा पश्येयु। जनाश्च सारथिं अवोचत्-तेन अत्वरमाण' त्व गच्छ यथा वय आर्यं राजान पश्येम अभिरूपम। तदा ही आनद! जानपदिका राज्ञ सुदर्शनस्य प्रिया मनापा भवन्ति यथा पितु प्रिय पुत्र जानापदिकाना च राजा प्रियो भवति यथा पुत्राणा पिता। ते प्रभूत सा पतेय दुर्लभ रत्न दातु राज्ञ आरोचयामासु-प्रतिगृह्णातु नः दानम्। राजा तान् प्रत्युवाच' अल भो! ममापि अस्ति सापतेय! यूय एव इतो हरथ। अन्यदा च राज्ञो मनसि एव अभूत यन्नु अह एतर्हि प्रासाद मापयेयं, कालेन काल यात्रा समये तद् जानपदिकानां गन्तव्यस्थान भविष्यति।' तेच राजान सुदर्शन अवोचन- वय हि एतर्हि राज्ञ'

प्रासाद मापयाम । एव उक्तो राजा तान् उवाच–विचारित मयावो दान प्रतिग्रहविषये ममाऽपि अस्ति बहु सामतेयम् ।' अथ जानपदिका पुन राजान अवोचन्–इच्छामो वय राज्ञे प्रसाद मापयितुम् राजा जनान् प्रत्युवाच–यथा काम कुरुथ ।

अथ राज्ञ आदेश उपलभ्य जनै चतुरशीतीशकटसहस्रै सुवर्ण आनीय कुशावत्या नगर्या धमप्रासाद मापयितु उपक्रान्तम् । तदा देवेषु विश्वकर्मा देवपुत्र स्वमनसि चिन्तयामास–यन्नु अह राज्ञे सुदर्शनाय धर्मप्रसाद मापयेयम । तदा आनद । विश्वकर्मा देवपुत्र धर्मप्रासीद मापयाचकार । आयामेन षष्ठि- योजन विस्तारेण त्रिंशद्योजन, चतुर्विधै रत्नैरसमलङ्कृतम् । तस्य सोपानानि सप्तविधै रत्न कुम्भै मसम्तृतानि । तस्मिन धर्मप्रासादेऽभूवन चतुरशीति स्तम्भ सहस्राणि–सुवर्णमये स्तम्भे रौप्यमग फलक, रौप्यमये, स्तम्भे सुवर्णमय, फलक, वैदूर्यमये स्तम्भे स्फटिकमय फलकम् । स्तम्भाना प्रासादस्य च परित चतुर्विधानि सोपानानि परिक्षिप्तानि चतुरत्नमयानि । सोपानफलकानि च चतुरत्नमयानि । तस्मिन धर्म–प्रासादे चतुरशीति कूटागार सहस्राणि–रत्नमये-कूटागार, सुवर्णमय फलक, रौप्यमये द्वारि रौप्यमय कूटागार, सुवर्णमये द्वारि स्फटिक मय०, वैदूर्यमय कूटागारम । द्वारि च तथा सुवर्णमये कूटागारे रौप्यमय पर्यंक रौप्यमये कूटागारे सुवर्णमय पर्यंक । तत्र सुगंधि सुवर्ण तन्तुभि उप्त आस्तरण, स्फटिक मये०, वैदूर्य मय०, वैदूर्यमये०, कूटागारे पर्यंकोऽपि तथा । स प्रासाद प्रभया प्रभासते, जनाना नेत्र मुष्य इव आत्मानमान न कोऽपि त [illegible] शक्नोति । [illegible] राज्ञ [illegible] मनसि [illegible] अभवत् यन्नु [illegible]

प्रासाद् मापयाम ।' एव उक्तो राजा तान् उवाच—'विचारित मया वो दान-प्रतिग्रह-विषये, ममाऽपि अस्ति बहु सामतेयम् ।' ,अथ जानपदिका पुन राजान अवोचन्—'इच्छामो वय राज्ञे प्रासादं मापयितुम् ।' राजा जनान् प्रत्युवाच—'यथाकाम कुरुथ ।'

अथ राज्ञ आदेश उपलभ्य जनै चतुरशीतिशकटसहस्रै: सुवर्ण आनीय कुशावत्या नगर्या धर्मप्रासाद मापयितु उपक्रान्तम् तदा देवेषु विश्वकर्मा देवपुत्रः स्वमनसि चिन्तयामास—'यन्नु अह राज्ञे सुदर्शनाय धर्मप्रसाद मापयेयम्' । तदा आनद । विश्वकर्मा देवपुत्र धर्मप्रासाद मापयाचकार आयामेन प्रष्टियोजनं विस्तारेण त्रिशद्योजनं, चतुर्विधै रत्नैस्समलंकृतम् । तस्य सोपानानि सप्तविधै· रत्नकुम्भै सस्तृतानि । तस्मिन् धर्मप्रासादेऽभूवन चतुरशीतिस्तम्भसहस्राणि—सुवर्णमये स्तम्भे रौप्यमय फलक, रौप्यमये स्तम्भे सुवर्णमय फलक, वैदूर्यमये स्तम्भे स्फटिकमय फलकम् । स्तम्भाना प्रासादस्य च परित चतुर्विधानि सोपानानि परिक्षिप्तानि चतूरत्नमयानि । सोपानफलकानि च चतूरत्नमयानि । तस्मिन् धर्मप्रासादे चतुरशीति-कूटागारसहस्राणि—रत्नमये कूटागारे०, ०सुवर्णमय फलकं, रौप्यमये द्वारि रौप्यमय कूटागार, सुवर्णमये द्वारि स्फटिकमयं , वैदूर्यमय कूटागारम् । द्वारि च तथा सुवर्णमये कूटागारे रौप्यमय पर्यंक, रौप्यमये कूटागारे सुवर्णमय पर्यंक । तत्र सुगधि सुवर्ण-तन्तुभि उक्त आस्तरण, स्फटिकमये०, वैदूर्यमय० वैदूर्यमये० कूटागारे पर्यंकोऽपि तथा । स प्रासाद प्रभया प्रभासते, जनाना, नेत्रै सूर्य इव आभासमान· न कोऽपि त द्रष्टु शक्नुयात् । अथ राज्ञः सुदर्शनस्य मनसि एव अभूत्—'यन्नु अह अस्य प्रासादस्य परित· मापयेय तालवन पुष्करिणीं च ' तदा राजा मापयामास (ताल) वन आयामेन एकयोजनम् । पुनश्च तस्य मनसि अभूत्—'यन्नु धर्मप्रसादस्य पुरस्तात् मापयेय धर्मपुष्करिणीं । अथ स क्षिप्र ता मापयामास आयामेन् एकयोजना, तस्या उदक स्वच्छं परिशुद्ध निर्मलम् । तस्या तल च चतूरत्नमयीभि इष्टकाभि· चित्तं, पुष्करिणी च (सा) पीतसुवर्णमयै श्वेतरौप्यमयै, स्फटिकमयै, वैदूर्यमयै च चतुर्वर्णै सोपानै· परिक्षिप्ता, चतुर्भीरत्नै संस्कृता । तस्या पुष्करिण्या उदके प्ररूढानि नानाविधानि पुष्पाणि, तद्यथा-उत्पलानि, पद्मानि, कुमुदानि, पुंडरीकानि, वाति तेभ्य सूक्ष्मो गध· प्रसरति च स चतसृषु दिक्षु । तस्या पुष्करिण्या चतुर्षु पार्श्वेषु भूमौ उत्पद्यन्ते अपमित (?) पुष्पाणि चपक—पुष्पाणि। पाटल-पुष्पाणि, सुमतु (?) पुष्पाणि अशोकपुष्पाणि, तक्कुमलि (?)

पुष्पाणि। मनुष्या पश्यति पुष्करिणीं तस्या, प्रविश्य, प्रक्षाल्य स्नात्वा (च) मोदमाना शैत्य विनोदयति। यथाकाम यस्य पानेन काम तस्मै पान दियते, अहारेण काम तस्मै अहार, परिधानेन ०, यानेन ०, अश्वेन ०, सुगंधिपुष्पै ०, रूप्यकेन ०, निधिना ०, न तु जनाना कामनाविरुद्धेन।

तदा आनद राज्ञ सुदर्शनस्य उपोसथनागराजप्रमुखानि चतुरशीतिनाग-सहस्राणि सुवर्णरौप्यालकाराणि मुक्तारत्नाभूषितानि, वलाहकाश्वराजप्रमुखानि चतुरशीत्यश्वसहस्राणि सुवर्णरौप्यालकाराणि मुक्तारत्नभूषितानि, चतुरशीतिरथ-सहस्राणि सुवर्णचक्ररत्नप्रमुखानि सिंहचर्मपरिवृतानि चतुरत्नालकृतानि, दिव्यमुक्ता प्रमुखानि चतुरशीतिम मुक्तासहस्राणि सुभद्रादेवीप्रमुखाति चतुरशीतिस्त्रीसहस्राणि, गृहपतिरत्नप्रमुखानि चतुरशीतिगृहपतिसहस्राणि, परिणायकरत्नप्रमुखानि चतुरशीति क्षत्रियसहस्राणि, कुशावतीनगरप्रमुखानि चतुरशीतिनगरसहस्राणि, धर्मप्रमादप्रमुखानि चतुरशीतिप्रसादसहस्राणि, महाव्यूहप्रमुखानि चतुरशीतिकूटागारसहस्राणि। चतुरशीतिपर्यंकसहस्राणि अभूवन् पीतसुवर्णमयानि श्वेतरौप्यमयानि नानारत्नमयानि नवतास्तृतानि गोचर्मास्तृतानि, प्रतिका०, पटलिका०, कदलीमृगास्तृतानि प्रत्यस्तराणि सोत्तरच्छदानि। चतुरशीतिवस्त्रकोटिसहस्राणि अभूवन् गोणकवस्त्राणि क्षौम० कौषेय० काशिक० कार्पासिक०। चतुरशीति स्थालिपाकसहस्राणि अहरहः अभिहार्यन्त स्म प्रतिस्थालिपाक भिन्न आस्वाद। तस्मिन् आनन्द! सिये राज्ञ सुदर्शनस्य चतुरशीतिनागसहस्राणि अभूवन्। राजा चाहं (१) नागारूढ अतिप्रगे कुशावतीनगरीतो निर्गत्य चतु समुद्रपर्यन्तां सर्वां पृथिवीं परिक्रम्य काले परावृत्त

चतुरशीतिप्रासादसहस्रेषु धर्मप्रासादे राजा सदा वसति। चतुरशीतिकूटागारसहस्रेषु महाव्यूहकूटागारे राजा सर्वदा वसति। चतुरशीतिपर्यंकसहस्रेषु स्फटिकपर्यंके ध्यायमानो राजा सदा वसति। चतुरशीतिवस्त्रकोटिसहस्रेषु सुसूक्ष्मं रत्नाखचित-वस्त्रं ह्रिया अपत्रपया च परिधत्ते। चतुरशीतिस्थालिपाकसहस्रेषु प्राकृतं तडुल संतुष्टमना राजा सदा भुक्ते। राज्ञ उपस्थाने चतुरशीतिनागसहस्राणि धावति परस्पर समर्दयन्ति तै जनानां अपरिमाणा क्षतिं श्रुत्वा राज्ञो मनसि एव अभूत- इमे नागा सदा उपतिष्ठन्ते, येन महती क्षति इत, पर वर्षशतस्य अत्ययेन आगच्छतु एको नाग। एव वर्षशतस्य अत्ययेन एकैकस्य पुन चक्रं आरम्येत।*

अथ बुद्धोऽवोचत—"तदा आनंद! राज्ञो मनसि एव अभूत-कस्य नु इद मे कर्मणो विपाक फलवा? कस्य कुशलमूलस्य एतर्हि एष विपाकोपलम्भ येनाह एव महर्धिक? अथ राज्ञ एव अभूत त्रयाणां खलु हेतुप्रत्ययाना पुण्यकर्मणा एप विपाकः। कतमेपात्रयाणा? (१) प्रथमं दान, (२) द्वितीय शील, (३) तृतीय ध्यान एतेषां हेतुप्रत्ययना महाविपाकस्य एतर्हि उपलम्भः। अथ राजा एव मनसि? चिन्तया मास मया एतर्हि उपलब्धो मानुष. कुशलविपाक पुनरपि लप्स्येदिव्यकर्मविपाकं सचेत् आत्मान दमयन् नि शब्दे विविक्ते स्थाने दूरं एकाकी विहरन मार्गं भावयेयम्। अथ खलु राजा स्त्रीरत्न सुभद्रा आहूय ता अवोचत् मया एतर्हि उपलब्धो मानुषक कुशल-विपाक पुनश्चलप्स्ये दिव्य कर्मविपाक सचेत् आत्मान दमयन् नि शब्दे विविक्ते स्थाने दूर एकाकी विहरन् मार्गं भावयेयम्।"

"अथ साऽवोचत्—एव यथा महाराज आज्ञापयति।"
"अथ राजा अज्ञापयामास मास्तु में अन्तर्वहिर्वो उपस्थानम्।"

अथ राजा धर्मप्रासादाद उत्थाय सुवर्णे महाव्यूह कूटागार प्रविश्य रौप्यमये राजपर्यंके निषण्ण विविक्त एव कामैः पापै अकुशलै सवितर्क सविचार विवेकज प्रीतिसुख प्रथम ध्यान उपसपद्य विजहार। वितर्क विचारयो उपशमात् अध्यात्मं सम्प्रसादन चित्तस्य एकोदिभाव अवितर्क अविचार समाधिज प्रीतिसुख द्वितीय

---

* यहाँपर "बुद्धभाषितस्य दीर्घागमसूत्रस्य तृतीय भाषावार" समाप्त। तथा "प्रथमभागे परिनिर्वाण सूत्रे तृतीयस्य द्वितीय" आरम्भ हुआ।

ध्यान उपसपद्य प्रीते विरागस्य च उपेक्षक स्मरन् सम्प्रजानन् सुख च कायेन संवेदयामास यत् तद् आर्या आचक्षन्ते स्मृतिमान सुखविहारीति तृतीय ध्यान उपसपद्य विजहार सुखस्य दु खस्य च प्रहाणात् पूर्वमेव सौमनस्य दौर्मनस्ययो अस्तगमाद् अदु ख असुख उपेक्षा स्मृति पारिशुद्धि चतुर्थ ध्यान उपसपद्य विजहार ।

अथ राजा सुदर्शनो रौप्यमयाद राजपर्यकाद् उत्थाय महा व्यूह कूटागार उपसगम्य वैदूर्यमये पर्यंके सन्निपएण मैत्री सहगतेन चेतसा विपुलेन एका दिश अपरा दिश च सर्वथा सर्वत्र अद्वितीयन अप्रमाणेन अद्रोहेण अव्यापादेन अवैरेण चेतसा विजहार । एव करुणा मुदितोपेक्षासहगतेन चेतसा च विजहार ।

"अथ खलु स्त्रीरत्नस्य सुभद्रादेव्या मनसि एतद् अभूत–चिरदृष्टो नो· राजा यन्नु एतर्हि उपसक्रमेय (त) उपस्थातुम । अथ स्त्रीरत्न सुभद्रा चतुरशीतिसुन्दरीसहस्राणि आमत्रयामास— एथ यूय स्नाथ सुगधिना उदकेन, पीतानि च वस्त्राणि प्रावेपयथ, चिरदृष्टो नो महाराज , तस्य दर्शनाय उपसक्रमिष्याम । एव श्रुत्वा सर्वा स्त्रिय स्नात्वा परिशुद्धानि वस्त्राणि प्रारोपयामासु । अथ स्त्रीरत्न सुभद्रा परिणायकरत्न आमत्रयामास— 'कल्पय न मत्रिन । चतुरगिनो सेना चिरदृष्टो नो राजा, तस्य दर्शनाय उपसक्रमिष्याम ।' अथ परिणायकरत्न मत्री चतुरगिनी सेना कल्पयित्वा स्त्रीरत्न प्रतिवेदयामास— 'कल्पिता देवि चतुरगिनी सेना, यस्य इदानी काल मन्यसे ।'

अथ स्त्रीरत्न सुभद्रा चतुरशीतिसुन्दरीसहस्रै चतुरगिण्या च सेनया समन्विता सुदर्शनाभिमुख उपसक्रान्ता । परिषद् कोलाहल श्राव्यते स्म । श्रुत्वा च शब्द राजा वातायनात् [illegible] स द्वारात् आनन्य [illegible] दृष्ट्वा च स्त्रीरत्न

इमानि ते देव! श्वेतनागप्रमुखानि चतुरशीतिनागसहस्राणि सुवर्णरौप्यलकारशृंखला-समन्वितानि राज्ञः मुक्तारत्नानि। अत्र त्व देव छन्दं जनय परस्पर प्रमोदस्व, दास-परिजनसहस्राणि वलाहकाश्वराजप्रमुखानि चतुरशीत्यश्वसहस्राणि, चक्ररत्नप्रमुखानि चतुरशीतिरथसहस्राणि, दिव्यमुक्तारत्नप्रमुखानि चतुरशीति मुक्तासहस्राणि, स्त्रीरत्नसुभद्राप्रमुखानि चतुरशीतिस्त्रीसहस्राणि, गृहपतिरत्नप्रमुखानि, चतुरशीतिगृहपतिसहस्राणि, परिणायकरत्नप्रमुखानि चतुरशीतिक्षत्रियसहस्राणि कुशावति प्रमुखानि चतुरशीतिनगरसहस्राणि धर्मप्रसाद-प्रमुखानि चतुरशीतिप्रासादसहस्राणि महाव्यूहप्रमुखानि चतुरशीतिकूटागारसहस्राणि रत्नालकृतासनप्रमुखानि चतुरशीतिपर्यंकसहस्राणि मजुवस्त्रप्रमुखानि चतुरशीति गोणकास्तरणसहस्राणि एतानि हि दुर्लभानि ते देव। नानाविधानि रत्नानि (तानि) विसृज्य मा त्व देव! जीवितं उत्सृज। अत्र त्वं देव! छद जनय परस्पर मोदस्व मा त्वं जीवितं उत्सृज दासपरिजनसहस्राणि परित्यज्य!

अथ राजा सुदर्शन स्त्रीरत्न सुभद्रा प्रत्यवोचत्— 'दीर्घरात्र त्वं देवि! मे समुदाचरः इष्टै कान्तै मनापै अपरूवै' शब्दै' कथ एतर्हि एव शब्द वदसि देवी राजान अवोचत्— 'मा देव मे वचन अप्रि जानीहि। राजा देवीं अवोचत्— 'यानि ते देवि! उक्तानि नागाश्व रत्नरथ सुवर्णचक्र प्रासाद कूटागार पर्यंकवस्त्र स्थाली पाकासनानि तानि न नित्यानि न चिरस्थितिकानि। अथापि त्वं मा समुतजयसि तिष्ठेति। किं नु ते एतद् आनुच्छविकम्?

राजा देवीं अवोचत्— "यानि त्वया देवि! उक्तानि नागाश्व० स्थालिपाकानि सर्वाणि तानि न नित्यानि न चिरस्थितिकानि। मा तत्र छंन्द जनय आत्मन क्लेशाय। तत् कस्मात्। राज्ञो जीवित न चिरस्थितिकम्। प्राणिनो जन्म मरण-समन्वागतम् अवश्यम् तस्य नानाभाव, यतो हि जातस्य इह सर्वदा जीवितसत्त्वय। प्रियस्य सरक्षण इति सन्मानाज्ञानुवर्तनाभि प्राणेय अवोच।"

अथ आनन्द! श्रुत्वा एतद् राज्ञो वचन देवी प्रारोदीत् विमोच्य च अश्रूणि पुन' एतद् अवोचत्— 'नागाश्व० स्थालीपाकानि सर्वाणि न नित्यानि न चिरस्थितिकानि, न तत्र छन्दो जनयितव्य आत्मन क्लेशाय। तत् कस्मात? राज्ञो जीवित न चिर स्थास्यति जीवितस्य जन्म मरणसमन्वागत। अवश्य भावी विप्रयोग।

यद् हि इह जात तत् सदा जीवतु इति प्रजहि राग मार्ग सरक्षणाय ।' तस्मिन् आनन्द ! स्त्रीरत्ने इमान् शब्दान् श्रतवति न चिरेण राजासुदर्शन काल अकरोत यथा हि बलवान् पुरूष मुक्तस्य सुभोजनस्य अक्लेशेन वमन कुर्याद्, एवमेव मृत्वा स सप्तमें ब्रह्मलोके उदपद्यत ! मृतस्य राज्ञ सुदर्शनस्य सप्तमे दिवसे न चिरेणैव चक्ररत्न मुक्तारत्न च अन्तरधाता नागरत्न अश्वरत्न, स्त्रीरत्न, गृहपतिरत्न, परिणायकरत्न तु तस्मिनेव दिवसे काल अकार्षु । नगर पुष्करिणी धर्मप्रासाद कूटागार रत्नालकृत पर्यंक सुवर्णतालवन च यथा पृथीवी यथा काष्ठ तथा अन्य थात्व यु ।

बुद्ध आनद अवोचत्— "इमे आनद ! सस्कृता धर्मा अध्रुवा विपरिणामिन, अवश्य एषा विनाश । रागस्य लोभस्य च न तृप्ति । पृथग्जनाना मनसि राग लोभ च तृप्ति विना तिष्ठत । केवल आर्य प्रज्ञया लब्ध्वा सत्यदृष्टि मार्गे च तुष्टो भवति। अह आनन्द ! पूर्वत अभिजानामि इम प्रदेशम् । षडवारम् अत्र आर्यराजा चक्रवर्ती भूत्वाऽह मृत अस्थीनि च मेऽत्र उत्सृष्टानि । एतर्हि अह अनुत्तर सम्यक सबुद्धो भूत्वा पुन जीवित उत्सृजामि शरीराणि च मेऽत्र अवशिष्यन्ते ।
इत परम हि नास्ति मे जाति मरण न स्थाने निदहनम् । इद मे पश्चिम शरीरस्थान नास्ति मे पुनर्भव ।"

अथ भगवान कुशीनगरस्य उपवर्तने शालवने अन्तरा यमक शालयो निर्वाणो पगत आनद अवोचत । गच्छ त्व आनन्द । कुशी नगर प्रविश्य मल्लान आरोचय, जानीथ आर्या । अद्य म यरात्रौ शालवने अन्तरा यमकशालयो तथागतस्य परिनिर्वाण भविष्यति । अभिक्रम च पृच्छथ यस्मिन् विषये वो विचिकित्सा, सम्मुखे एतर्हि लभध्व तथागतस्य अवकाश मा पश्चात् विप्रतिसारिणो भवेथा ।

अथ आनन्द अश्रूणि विमुञ्चन उवाच- "अह वो हितकामतया आगतो युष्मान् कथयितु जानीय अद्य-मध्यरात्रौ तथागत परिनिर्वास्यति अभिक्रमथ पृच्छथ विचिकित्सां सम्मुखे लभध्वं अववाद एतस्मिन्नेव समये मा पश्चाद् विप्रतिसारिणो भवेथा ।

श्रुत्वा (च) एतद् वचन मल्ला उच्चै क्रन्दन्ति छिन्नपातं प्रपतति भूमौ आवर्तन्ते विवर्तन्ते, पुन सज्ञा लब्ध्वा छिन्नमुलो भग्नशाखो वृक्ष इव पतत सक्रंदति ···· "बुद्धा (भगवान) परिनिर्वास्यति । कथं अतिक्षिप्रं बुद्ध परिनिर्वास्यति, कथ सुगत. अतिक्षिप्रं परिनिर्वास्यति । सत्वा विनश्यति लोकचक्षुरन्तर्धास्यति ।"

अथ आनन्दो मल्लान् अश्वासयन अवोचत् ·· "अल अल माशोचथ दश-साहस्र्यां लोकधातौ न किमपि ज्ञायते मरण विना । सर्वेश सस्कृता तिष्ठन्त्विति च्छथ तत् न लभ्य इति किं बुद्धेन नाख्यातम् ? सर्वस्य सप्रयोगस्य अवश्यं विप्रयोग. जातस्यहि ध्रुवो मृत्यु. ।"

अथ मल्ला परस्पर अवोचन्-गच्छामो वय सपरिवारा पचावदातदुष्यशतै (सह) यमकशालयों प्रदेशे ।"

अथ मल्ला गृह गत्वा सपरिवारा अवदातान्दुष्यान् गृहीत्वा कुशीनगराद् निर्गम्य अन्तरा यमकशालयो रूपसंक्रान्ता. । तदा (च) आयुष्मान् आनन्द चितयामास ·· वहव इमे जना स चेद् अहं एकमेक बुद्धस्य दर्शनाय नयामि अवदित एव इह बुद्धः परिनिर्वास्यति । यन्नु अह एतर्हि पूर्वरात्रौ एकस्मिन् समये एव बुद्धस्य दर्शनाय पचमल्लशतानि सपरिवाराणि उपनीय भगवत पादौ शिरसा वदापयेयमिति । 'तत' एकमन्त स्थित आनन्द· बुद्ध अवोचत् अमुकेऽमुके मल्ला सपरिवारा भगवन्तं वन्दन्ते कुशलस्य वृध्ये अकुशलस्य क्षयाय ।'

बुद्धोऽवोचत्— "कष्ट व इह आगमने, दीर्घायुषो भवन्तु निराबाधिका निष्पीडिता ।"

अथ आनन्द एव मल्लान् सपरिवारान् उपनीय भगवन्त वदापयामास । शिरसा भगवत. पादौ वदित्वा च मल्ला एकमन्त न्यषीदन् । अथ भगवान् अनित्यता जगत प्रादर्शयत् । देशनालाभेन हृष्टतुष्टा धर्मश्रवेण आल्हादिता पचदुष्यशतानि भगवत प्रादु बुद्धश्चते तानि स्वीचकार

अथ मल्ला उत्थाय आसनाद् बुद्ध अभिवाद्य निष्क्रान्ता' ।

तस्मिन् समये कुशीनगरे सुभद्रो नाम ब्राह्मण प्रतिवसतिस्म वयसा विंशोत्तर-शतवत्सरो वृद्धो बहुप्रज्ञ । अशृणोत् स 'अद्य रात्रौ श्रमणो गौतमोऽन्तरा यमकशालयो परिनिर्वास्यति' । तस्य मनसि अभूत्—"अस्ति च मे धर्मे विचिकित्सा, यां गौतम एव मे भाव ज्ञातु' प्रभवति । एतर्हि समय तत्र गन्तुम्" ।

अथ तस्यां (एव) रात्रौ कुशीनगरात् निर्गम्य स (यत्र) यमकशालयो स्थान यत्र च आनन्द तत्र उपसक्रम्य अभिवाद्य च (एकमन्त स्थित) एकमन्त स्थित (च) त आनद एव अवोचत्—'श्रुत मे, श्रमणो गौतम अद्यैव रात्रौ परिनिर्वास्यतीति अह अत्रागत एक प्रश्न प्रष्टुम । अस्ति मे काङ्क्षाधर्म , लभेय गौतम द्रष्टु' सकृद् विचारयितु मे प्रश्न लभेय द्रष्टु अवकाशम ।'

निषेधयन आनन्द प्रत्युवाच—"अल अल सुभद्र ! अस्ति भगवत (बुद्धस्य) काय आवाधा मा पीडय भगवन्तम "

पुनरपि सुभद्र द्वितीय तृतीय अपि निरबध्नात् । अशृणोत तथागत —'लोके उदुम्बरपुष्पवत कदाचिदेव दीर्घकालेन तथागतस्य उत्पाद इति प्रष्टु काङ्क्षा मे निवारयितु आगतोऽत्र । अवकाश कुरुष्व दर्शनाय ।'

आनन्द यथापूर्वं निषेधयन प्रत्युवाच—'भगवत काय आवाधा, मा पीडय ।'

अथ बुद्धोऽवोचत्—'अल आनद ! मा सुभद्र वारय, लभतामोऽत्र काङ्क्षा-निवारण, न भवेत् मे पीडा । स चेत् श्रोष्यति धर्मम आज्ञास्यति ।'

अथ आनन्द सुभद्र अवोचत्—'यत् त्व बुद्ध द्रष्टु इच्छसि, जानीहि (अस्ति) अत्र अवकाश ।

बुद्धोऽवोचत्— "अल सुभद्र ! अल एतेन विवादेन । यद् अहं जानामि तत् ते भाषिष्ये, शृणु गभीर धर्मं साधुक मनसि कुरु।"

सुभद्रोऽलभत अवकाश, बुद्ध त अवोचत्— "यस्मिन् धर्मे आर्योऽष्टांगिको मार्गो नास्ति, तत्र प्रथम श्रमणो न लभ्यते, द्वितीय तृतीय चतुर्थ श्रमणोऽपि न लभ्यते । यस्मिन् सुभद्र ! धर्मे आर्योऽष्टांगिको मार्ग. तत्र प्रथम. श्रमणो लभ्यते, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ श्रमणोऽपि लभ्यते । अत्रैव सुभद्र ! मे धर्मेऽस्ति आर्यो-ऽष्टांगिको मार्ग, तेन अत्र प्रथम श्रमण उपलभ्यते, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ श्रमणोऽपि उपलभ्यते । अबौद्धा (तीर्थिका) अन्ये संघा शून्या. श्रमणै ।"

तस्मिन् काले भगवान् सुभद्र गाथयाऽवोचत्—

एकोनविंशद्वयसी सुभद्र, यत् प्राव्रज किंकुशलानुगवेषी ।
बुद्धोऽभव कालत एष यस्माद् वर्षाणि पचाशसमाधिकानि ॥ ७६ (४६) ॥
शील समाधि प्रज्ञा च केवल ह्यत्र भाव्यते ।
धर्मन्यायपुतो नास्ति श्रमणो वहिरप्यत ॥ ७७ (५०) ॥

बुद्ध सुभद्र "अवोचत्- "भिक्षव चेद् आत्मान सयम्य विहरेयु, अशून्य स्याद् अय लोकोऽर्हद्भि ।

तस्मिन् काले सुभद्र आनंद [1] अवोचत्-"श्रमणे गौतम ब्रह्मचर्यं चरता एतर्हि महत फलस्य अधिगमाय अनुष्ठेयम् । युष्माभि आनद । तथागत ब्रह्मचर्यं अनुष्ठित लभ्येत च (वो) महाफलम् । मया च योयं दृष्ट. तथागते; काला च पृष्टा, तदपि स्यात् महाफलाधिगमाय । एतर्हि तथागतोऽन्तेवासीव मां आदिष्टवान् ।"

अथ स भगवन्त अवोचत्-"लभेयाह भन्ते ! बुद्धस्य धर्मे प्रव्रज्यां लभेयाह उप-सम्पदाम् ।"

बुद्धोऽवोचत्-",य (खलु) सुभद्र ! अन्यतीर्थिक् ब्राह्मण मम धर्मे ब्रह्म-चर्यं वाञ्छति वस्तु स परिविसति चतुरो मासान् तत दृष्ट्वा तस्य पुरुष्य आचरण, परीक्ष्य तस्य भाव, अनुरूपा मलप्रसादरहितता वृत्ति च भिक्षव मम धर्मे प्रव्रा-जयन्ति । शील सुभद्र ! पुरुपस्य मूलमिति जानीहि ।

तत सुभद्रोऽवोचत्- "अबौद्ध चेद् अन्यतीर्थिको बुद्धस्य धर्मे चतुरो मासान् परिवसति, तस्य पुरुपस्य आचरण दृष्ट्वा तस्य भाव अनुरूपा मलप्रमादरहिता वृत्ति

---

१ भगवन्त–पालि मे

च परीक्ष्य प्रव्रज्या दीयते, अह तर्हि अनुरूपया मलप्रसादरहितया वृत्या सेवमान चत्वारि सवत्सराणि परिवसिष्यामि, अथ लभेयाह प्रव्रज्याम् ।"

बुद्ध सुभद्र अवोचत्–"मया पूर्वं पुरुष अधिकृत्य उक्तम् ।"

सुभद्रोऽथ तस्या एव रात्रौ अलभत प्रव्रज्या उपसम्पदा ब्रह्मचर्ये, दृष्ट एव धर्मे (काये) स्वय अभिज्ञाय व्याजहार–तस्य क्षीण जाति-मरण उषित तेम ब्रह्मचर्यं कृत करणीय, उपलब्धा प्रज्ञा नाऽभूत तस्य पुनर्भव । तस्या एव रात्रौ न चिरेण स अर्हन् बुद्धस्य निर्वाणात् प्रथम अभूत् तथागतस्य पश्चिमोऽन्तेवासी ।

तस्मिन् काले आयुष्मान् आनद पर्यंक आलम्ब्य बुद्धस्य पृष्ठत क्रन्दमान रुदन स्थितो वदति–नाह आत्मजित, तथागत च परिनिर्वाति । कथ अतिक्षिप्र भगवान् निर्वाति ? कथ अतिक्षिप्र महाधर्मोऽन्तर्धीयते ? अहो वत ! अतिक्षिप्र असख्यया सत्त्वा चिरनष्टा भविष्यति अन्तर्हिते लोकचक्षुषि ! लब्ध्वाऽपि बुद्ध अनुकम्पक (इदानीमपि) अह शैक्ष्यभूमिस्थ , अकृतकरणीय , बुद्धश्च निर्वाति ।"

जानन अपि भगवान् साभिप्राय अपृच्छत–"कुत्रास्ते एतर्हि आनन्दो भिक्षु ?"

भिक्षव तथागत अवोचन–' बुद्धस्य पृष्ठत पर्यंक आलम्ब्य क्रन्दमान आनन्दो भिक्षु तिष्ठति–"नाह आत्माजित बुद्धश्च निर्वाति ।"

बुद्धोऽवोचत्–' अल आनन्द ! मा शुच मा परिदेवय, दीर्घरात्र ते आनन्द मैत्रेण अद्वयेन अप्रमाणेन कायकर्मणा मैत्रेण वाक्कर्मणा मैत्रेण अद्वयेन मनस्कर्मणा अह प्रत्युपस्थित । कृतपुण्योऽसि त्व आनन्द देवेषु मारब्रह्मणो श्रमण ब्राह्मणयो वा न कोऽपि पुण्येन त्वया समसम । प्रधान अनुयुञ्ज्व प्राप्स्यसि न चिरेण मार्गम् ।'

रूपता अस्ति चक्रवर्त्तीति अतृप्ता भवति। राजा चक्रवर्त्ती यदा तिष्ठति निषीदति उत्तिष्ठति शेते वा, तदा देशाभ्यतरे अमात्यजना सर्वे उपसंक्रमन्ति राज्ञो दर्शनेन च आत्तमनसो भाषितेनाऽपि आत्तमनस अभिरूपता विलोकनेनाऽपि अतृप्ता भवन्ति। राज्ञ चक्रवर्त्तिन इमे चत्वार आश्चर्याद्भुताधर्मा एतर्हि आनदेऽपि मे सति।

"इमे ऽपि चत्वारोविशेषाआनदे। कतमे चत्वारो धर्मा आनद्रे ? सचेद् भिक्षु परिषदि आनद उपसक्रामति दर्शनेन सा आत्तमना भवति, धर्मंभाषते, तर्हि श्रुत्वा आत्तमना भवति। तस्य रूपदर्शनेन तस्य धर्मावदश्रवणेन अतृप्ता एव भवति। पुनश्च आनद स चेद् भिक्षुणिपरिषदि०।०उपासकपरिषदि०।०उपासिकापरिषदि वा उपसक्रामति दर्शनेन आत्तमना, धर्म भाषते चेत् श्रवणेनाऽपि आत्तमना अभिरूपदर्शनेन धर्मदेशनाश्रवणेन (च) अतृप्ता भवति। इमे संति आनदे चत्वार आश्चर्याद्भुता धर्मा।

अथ आयुष्मान आनंदो दक्षिणासं ईषद् विवृत्य दक्षिणजानु न भूमौ निपात्य बुद्ध अवोचत्— "पूर्वं भगवन् चतुर्भ्यो दिग्भ्य श्रमणा बहुप्रज्ञा सूत्र-विनय-पडिता शुद्धशीला सुकर्माण उपसक्रामति भगवन्त पर्युपासनाय। अह स्वय अभिवाद्य तान् अपि अभिवादापयामि पर्युपासापयामि। परिनिर्वृते बुद्धे ते पुन दर्शनं न लब्ध्वा किं करिष्यन्ति ?

बुद्धोऽवोचत्— "अल्पोत्सुका आनद ! यूय भवथ। चत्त्वारि इमानि आनंद ! कुलपुत्राणा दर्शनीयानि स्थानानि। कतमानि चत्वारि ?— (१) इह बुद्धो जात इति प्रथम श्रद्धाना कुलपुत्राणा सर्वजनीय दर्शनीय प्रथम स्थान, यद् दृष्ट्वा स्मृत्वा अविस्मृत्य मनसि ते श्रद्धा उत्पादयिष्यति। (२) इह बुद्ध प्रथम मार्गं उपलब्धवान् इति द्वितीय स्थान सर्वजनीय दृष्ट्वा स्मृत्वा अविस्मृत्य मनसि श्रद्धा उत्पादयिष्यति। (३) इह बुद्धेन धर्मचक्र प्रवर्त्तित० इति तृतीय स्थान सर्वजनीय दृष्ट्वा स्मृत्वा अविस्मृत्य मनसि श्रद्धा० उत्पादयिष्यति। (४) इह बुद्ध परिनिर्वृत इति चतुर्थं स्थानं सर्वजनीय दृष्ट्वा स्मृत्वा अविस्मृत्य मनसि श्रद्धा० उत्पादयिष्यन्ति परि निर्वृत्ते मयि कुलपुत्रा कुलकुमारिकाश्च 'इह बुद्धो जात' इति अनुस्मृत्य पुण्यलाभिन, 'इह बुद्धेन मार्ग उपलब्धो दिव्यशक्तिश्च, 'इह धर्मचक्रं प्रवर्त्तित लोकाना विमुक्तये', 'इह बुद्ध' धर्मं अवस्थाप्य परिनिर्वृत' इति ते उपसक्रमिष्यति। इमानि स्थानानि उपागम्य स्तूपाना विहाराणा पूजां च कृत्वा

अथ बुद्ध आनंद अवोचत्— 'मयि परिनिर्वृते आगार विहाय चतुर्मार्गापेक्षा शाक्यकुलोद्गता अनायासेन प्रव्रज्यालाभिनो भवेयु । अन्यतीर्थिका ब्राह्मणा अपि प्रव्रज्यार्थमागता. चतुर्णां मासाना परिवास विना अनागार्यो प्रव्रज्या न लभेरन्। तत् कस्मात् ? भिन्न हि तेषा आचार्यक, अपरिवासे तेषा पूर्वा दृष्टि उत्पद्यत ।''

अथ आनन्दो दीर्घं अभिवाद्य अजलि प्रणाम्य बुद्ध अवोचत्— 'परिनिर्वृते बुद्धे अशुश्रूषुणा छन्नेन भिक्षुणा सह कथ वर्त्तितव्यम ?''

बुद्धोऽवोचत्— ''मयि परिनिर्वृत आनद ! स चेत छन्नो नानुरूप आचरेत् नादेश पालयेत, तर्हि युष्माभि सभूय तस्य ब्रह्मदण्डो दातव्य — सर्वै भिक्षुभि नाऽसौ वक्तव्य , न चानुशासितव्य ।''

अथ आनद पुन बुद्ध अवोचत्— ''परिनिर्वृते बुद्धे स चेत मातृग्रामो दर्शनार्थं उपसक्रमेत ताभिस्सह, कथ प्रतिपत्तव्यम ।

बुद्धोऽवोचत— ''अदर्शन आनद !

आनन्द पुनरवोचत—''दर्शन चेत् कथ प्रतिपत्तव्यम ?''

बुद्धोऽवोचत- 'अनालाप परस्परम ।''

आनन्द पुनरवोचत- 'आलापश्चेत् कथ प्रतिपत्तव्यम् ?''

बुद्धोऽ-वोचत्-'आमन्त चित्त पर्यवदपितव्यम्। स्याद् आनन्द युष्माक 'परिनिर्वृत बुद्धे न पुन न शास्ता तायी।' न खलु एव द्रष्टव्यम। बोधिलाभत प्रभृति यो मया धर्म मया विनयश्च देशित , सर्वोऽस्मि शास्ता। आकाङ्क्षमाण आनन्द ! इत पर संघ क्षुद्रानुक्षुद्रकाणि शिक्षापदानि समुत्सृजतु। सर्वे भिक्षव परस्पर सम्मोदमाना आकारान् प्रकाश्य परस्पर सम्मोदमाना अनुमोदमाना अस्मिन धर्मे विहरन्तु।

तदाऽपि ते भिक्षव तूष्णीं अभूवन्। अथ आनद बुद्ध अवोचत-"एवं दृष्ट्वा अहं प्रसन्न, अस्मिन् सघे सर्व एव अभिप्रसन्ना., नास्ति एकस्याऽपि भिक्षो बुद्धे धर्मे सघे वा कांक्षा, मार्गे वा विचिकित्सा।

बुद्धोऽवोचत्-अहं अपि आनंद! स्वयं जानामि, एतर्हि अस्मिन् सघे य' पश्चिमक: भिक्षु स दृष्टमार्ग स्रोतआपन्न: अविनिपातधर्मा सप्तकृत्व' म परमं आगम्य दु खस्यान्त करिष्यति।"

अथ खलु भगवान् तदा व्याकरोत्-"द्वादश श्रावकशतानि लप्स्यन्ते मार्फलम्।"

अथ भगवान् उत्तरासंगत' सुवर्ण वर्णं बाहुं निस्सार्य तान् भिक्षून् अवोचत्'- "तथागतस्य दर्शन लोके कदाचिदेव भवति यथा उदुम्बरपुष्पं कदाचिदेव प्रादुर्भवति।

अथ इममेव अर्थं विदित्वा भगवान् गाथयाऽवोचत—

अरुण वर्ण बाहु निस्सार्य बुद्ध: प्रादुरकरोद् अद्भुत निमित्तम्।

आगतुका. संस्कारा अनित्या उत्पद्य विनश्यन्ति मा प्रमादेथा. ॥ ७८(५१) ॥

तस्माद् भिक्षव' अप्रमादेन समादपयथ। नाह प्रामद, तेन सम्यक् सबुद्ध असख्येयगुण जात' "व्ययधर्मा. सस्कारा', अप्रमादेन सम्पादयेथा-इय अस्ति तथागतस्य पश्चिमा वाग्।

अथ खलु भगवान् प्रथमं ध्यान समापद्यत, प्रथमाद् ध्यानाद् उत्थाय द्वितीयं ध्यान समापद्यत, द्वितीयात् ध्यानाद् उत्थाय तृतीय ध्यानं समापद्यत तृतीयाद् ध्यानाद् उत्थाय चतुर्थं ध्यान समापद्यत, चतुर्थाद् ध्यानाद् उत्थाय शून्यायतन-आकाशानन्त्यायतन ध्यान [समापत्ति] समापद्यत, शून्यायतन ध्यानाद् उत्थाय विज्ञानायतनध्यान (समापत्ति) समापद्यत, विज्ञानध्यानाद् उत्थाय आकिंचन्यायतन ध्यान (समापत्ति) समापद्यत आकिंचन्या यतन ध्यानाद् उत्थाय नैव संज्ञाना संज्ञायतानं ध्यान (समापत्ति) समापद्यत, नैव सज्ञाना संज्ञायतन ध्यानाद् उत्थाय सज्ञावेदयितनिरोधं समापद्यत।

अथ खलु आनद आयुष्मन्त अनुरुद्ध' अपृच्छत् परिनिर्वृत. भन्ते! भगवान् इति। अनुरुद्धोऽवोचत् न आनंद, भगवान् एतर्हि, सज्ञावेदयित निरोध समापन्न मया पूर्वं बुद्धात् श्रुत-चतुर्भ्य ध्यानेभ्य उत्थाय तथागत परि निर्वातीति।

अथ भगवान् संज्ञावेदयित निरोध ध्यानात् (० समापत्ते') उत्थाय नैव सज्ञाना सज्ञायतनं ध्यानं समापद्यत, नैव सज्ञाना सज्ञायतन ध्यानाद् उत्थाय आकिंचन्य

ध्यान, ० विज्ञानायतनध्यानाद् उत्थाय आकाशायतन ध्यान, आकाशायतनध्य उत्थाय चतुर्थ ध्यान, चतुर्थाद् ध्यानात् उत्थाय तृतीय ध्यान, तृतीयाद् ध्य उत्थाय द्वितीय ध्यान द्वितीयाद ध्यानात् उत्थाय प्रथम ध्यान समापद्यत, प्रथ ध्यानात् उत्थाय द्वितीय ध्यान० चतुर्थ ध्यान समापद्यत, चतुर्थात् ध्यानात् समु भगवान् परिनिर्वृत ।

तस्मिन काले महाभूमिचालोऽभूत, देवेषु मानुषेषु महाभय उदपादि, भवेषु नारकेषु सूर्ये चन्द्रमसि (च) अवभासोऽभूत। अनवभासितानि स्था अपि महावभास अलभन्त, सर्वे परस्पर अपश्यन् परस्पर समवदन्–"अमुक अत्र जात, अमुक पुरुष अत्र जात। अय अवभास सर्वत्र देवावभासत प्रणीत ।तस्मिन काले तुषित देवालोकाद् दिव्याना मदार पुष्पाणा उत्पल पुष्पाणा पुष्पाणा कुमुद पुष्पाणा पुण्डरीक पुष्पाणा वृष्टि तथागतस्य सघस्य च उपरि अ दिव्याना पुनश्च मुचिलिन्द (पुष्पाणा) वृष्टि बुद्धस्य सघस्य च उपरि जाता।

परिनिर्वृत बुद्धे ब्रह्मादेवराज आकाशे (स्थित) आभ्या गाथे अभाषत।

सर्वे एव निक्षेप्स्यन्ति भूता लोके समुच्छ्रयम ।
यत्रैतादृशो बुद्धो लोके ह्यप्रति पुद्गल ॥७६॥ ५० ॥

तथागतो महावीरो ह्यभया दिव्य शक्तिमान ।
चिरस्थितिकोऽपि भगवान परमे तर्हि परि निर्वृत ॥८०॥५१॥

अथ शक्रो देवानामिन्द्रो गाथा भाषत —

अथ भिक्षुः उपवान् गाथां अभाषत—

अप्रमत्तेन चित्तेन स्वयं संयम्य प्रज्ञा मनुतिष्ठति ।
अद्वेषश्चासल्लीनो विरागाद् न ह्यनुत्तरः ॥८४॥५७॥

अथ भिक्षुरानन्दो गाथा अभाषत—

देव मानुषयो भीषणक तदासीत् लोमहर्षणम् ।
सर्वाकारवरोपेतो यदा बुद्ध सुनिर्वृत. ॥८५॥५८॥

अथ वीरा देवता च गाथां अभाषत—

तायिना वचितो लोक. सत्वा नित्य तमोवृता ।
न पुनर्बुद्ध द्रक्ष्यति शाक्य सिंहं नरवीरम् ॥८६॥५९॥

अथ गुह्य संकेतवलो जन च गाथा अभाषत—

नाय लोको न परो ब्रह्मलोको देवा मानवा च ।
न पुनर्बुद्ध द्रक्ष्यन्ति शाक्य सिंह नरवीरम् ॥८७॥६०॥

अथ बुद्धमाता महामाया गाथा अभाषत—

जातो बुद्धो लुम्बिनी वने मार्गस्तस्य सुविस्तृत ।
मूलस्थान परावृत्तो त्यक्त्वा काय अनित्यकम् ॥८८॥६१॥

अथ यमक शालदेवता गाथा अभाषत—

बुद्धे भविष्यति कदा पुनरकालकुसुमवृष्टि ।
पूर्ण पुण्यो दशबल तथा गतो (हि) निर्वृत ॥८९॥६२॥

अथ शालवन देवता गाथां अभाषत—

शुभ धन्यमिद स्थान बुद्धोऽत्र समजायत ।
प्रवर्त्तित धर्मचक्र इह चात्र सुनिर्वृत ॥९०॥६३॥

अथ देवराजश्च गाथा अभाषत—

तथागतोऽनुत्तर प्रज्ञ सदाबोधदनित्यताम् ।
दुःखात् सत्वान् मोचयित्वान्त्ये निर्वाण माविशत्॥९१॥६४॥

अथ त्रायस्त्रिंश(त्रिंशिन्-लो) देवराजश्च गाथा अभाषत—

सदा कोटिषु कल्पेषु मार्गो भवत्यनुत्तर ।
दुःखात सत्वान मोचयित्वाऽन्त्ये निर्वाणमाविशत ॥९२॥६५॥

अथ ग्रीष्मदेवराजो गाथां अभाषत—

पश्चिम चीवर मिद छादयति तथा गतकायम् ।

सबुद्धे परिनिवृते चीवर कस्य दीयताम् ॥६३॥६६॥

अथ तुषित देव राजश्च गाथा अभाषत—

अत्राय पश्चिम काय स्कधायतन विनश्यति ।

वेदना न सुखाऽदुखा न च मृत्युजरादु खम ॥६४॥६७॥

अथ स्वनिर्मित वश वर्ति देवराजश्च गाथा अभाषत—

बुद्धोऽस्याम पर रात्रौ शयानो दक्षिण पार्श्वे ।

एतस्मिन्नेव शालवने शाक्य सिंह सुनिर्वृत ॥६५॥६८॥

अथ परिनिर्मित वशवर्ति देवराजश्च गाथा अभाषत—

लोको नित्य तमस्यति चन्द्र पतति तारक राज ।

आवृणोति ह्ययनित्यता प्रज्ञा मर्य मु निवृते ॥६६॥६९॥

अथ भिक्षवश्च गाथे अभाषन्त—

बुद्बुदोपमके काये भगुरे क, सुखी भवेत ।

वज्रकायोऽपि बुद्धस्य सोऽनित्य इव नश्र भाक ॥६७॥७०॥

वज्र कायश्च बुद्धाना तस्या नन्या निवर्तिता ॥६८॥७१॥

परिनिर्वृतु बुद्धे त भिक्षव क्रन्दत परिदेवयन्तो भूमौ प्रपतति आवर्तन्ते आत्मान श्रमयम्त स बाष्प क्रोशन्ति । तथागत परिनिर्वृत । कथ भगवान अतिक्षिप्र परिनिर्वृत ॥ कथ अनिक्षिप्र महावर्मोऽन्तर्हित । कथ अनिक्षिप्र सत्त्वाना चिरविनाश ।

परिनिर्वृत' ० छिन्न सर्प इव आवर्त्तन्ते विवर्तन्ते, किं कर्तव्यमिति न जानंति। एतस्मिन् काले देवता अपि सर्वत्र आकाशे परि धावन्त्य ०।"

अथ ते भिक्षव यावत् प्रात सर्वां रात्रिं धर्म्यां कथा अकथयन्। अनुरुद्ध आनंद आमंत्रयामास—गच्छ कुशी नगरं प्रविश्य मल्लान आरोचय—'परिनिर्वृतो भगवान् यस्ये दानीं कालं मन्यध्वे।

अथ आनंद उत्थाय बुद्धस्य पादौ अभिवाद्य एकेन भिक्षुणा सार्धं क्रन्दमान. नगर प्राविशत्। तत्र अपश्यत् पंचमल्ल शतानि सस्थागारे सन्निपतितानि केनचित् करणीयेन ते मल्ला आनद आगत दृष्ट्वा उत्थाय सम्मोद्य पादौ अभिवाद्य स्थिता आनद अवोचन् "कथ भन्ते एतर्हि अतिप्रग आगत ?"

आनद प्रत्युवाच—"हितकामो व एतर्हि प्रातरागत. ।तथागतोऽतीतायां रात्रौ परिनिर्वृत इति जानीथ, यस्येदानीं काल मन्यध्वे ।"

अथ एद वचन श्रुत्वा मल्लेषु न कोऽपिय न क्रन्दति, अश्रूणि विमोचयन् न वदति "कथ अतिक्षिप्र बुद्ध' परिनिर्वृत । कथ अतिक्षिप्रं लोकचक्षुरन्तिर्हितम् ॥

आनन्द तांन प्रत्युवाच—"अल अल भद्रमुखा मा शोचथा. । यत् जात सस्कृतं तत् मा रूज्यतु मा विनश्यतु इति कुतोऽत्र लभ्यं । प्रागेव बुद्धेन आख्यातं—'जातस्य ध्रुवो मृत्यु सर्वे. प्रियै विप्र योग न सदा स्थिति ।

अथ ते मल्ला एकमेक ऊचुः—तेन सर्वे सन्निपत्य सर्वेण गधमालेन बहुविधेन नृत्यगीतेन च सार्धं गच्छेम यमक शालयो (स्थानम्) ।"

शरीर पूजयन्त एक दिनं व्यतिनामय्य बुद्धस्य शरीर पर्यंके संस्थाप्यमल्ल-कुमारै' चतुष्कोणत पर्यंके उत्थाप्य धूपंधूपयत पुष्पाणि विकिरन्तो नृत्येन गीतेन पूजयन्त पुरस्तिमेन द्वारेण नगर प्रविश्य वीथिषु जानपदिकै जनै सत्क्रियमाण शरीर (गृहीत्वा) पश्चिमेन द्वारेण नगरात् निष्क्रम्य उच्चविशेष स्थाने धस्याम इति विनिश्चित्य मल्ला स्वमह उपगम्य गधमाल चादाय नाना विधेन नृत्यगीतेन सार्धं यमक शालयो स्थाने (बुद्धस्य) शरीर पूजयन्त एक दिन व्यतिनामयामासु। बुद्धस्य शरीर पर्यंक आरोप्य मल्ला पर्यंक उच्चारयिष्याम इति। विचार्य पर्यंक उच्चारयितुम् ना शक्नुवन। तदा आयुष्मान् अनुरुद्धो मल्लान् अवोचत–"अल वो मा आयासयथ अन्यथा एतर्हि देवताना अभिप्राय पर्यंकोच्चारणे ?' मल्ला अवोचन्–"को देवताना अभिप्राय एतर्हि पर्यंकोच्चारणे ?"

अथ ग्रीष्मदेवराजो गाथां अभाषत—

पश्चिम चीवर मिद छादयति तथा गतकायम् ।
सबुद्धे परिनिवृते चीवर कस्य दीयताम् ॥६३॥६६॥

अथ तुषित देव राजश्च गाथा अभाषत—

अत्राय पश्चिम काय स्कधायतन विनश्यति ।
वेदना न सुखाऽदुखा न च मृत्युजराद्दु खम ॥६४॥६७॥

अथ स्वनिर्मित वश वर्ति देवराजश्च गाथा अभाषत—

वुद्धोऽस्याम पर रात्रौ शयानो दक्षिण पार्श्वे ।
एतस्मिन्नेव शालवने शाक्य सिंह सुनिर्वृत ॥६५॥६८॥

अथ परिनिर्मित वशवर्ति देवराजश्च गाथा अभाषत—

लोको नित्य तमस्यति चन्द्र पतति तारक राज ।
आवृणोति ह्ययनित्यता प्रज्ञा सर्य सु निवृते ॥६६॥६६॥

अथ भिक्षवश्च गाथे अभाषन्त—

वुद्वुदोपमके काये भगुरे क, सुखी भवेत् ।
वज्रकायो ऽपि वुद्धस्य सोऽनित्य इव नष्ट भाक ॥६७॥७०॥
वज्र कायश्च वुद्धाना तेष्या नन्या निवर्तिना ॥६८॥७१॥

परिनिर्वृतु वुद्धे त भिनव क्रन्त परिदेवयन्तो भूमौ प्रपतति आवर्तन्ते आत्मान अमयम्य स वाष्प क्रोशति । तथागत परिनिर्वृत । कथ भगवान अतिशिघ्र परिनिर्वृत ॥ कथ अनिक्षिप्र महाधर्मोऽन्तर्हित । कथ अतिक्षिप्र सत्वाना चिरविनाश । लोकचक्षु विनष्टम । ते छिन्न मलो भग्नशाखो महावृक्ष इव छिन्न सर्वद्रय

परिनिर्वृत. ० छिन्न सर्प इव आवर्त्तन्ते विवर्तन्ते, किं कर्तव्यमिति न जानंति। एतस्मिन् काले देवता अपि सर्वत्र आकाशे परि धावन्त्य. ० ।"

अथ ते भिक्षव' यावत् प्रात सर्वा रात्रिं धर्म्यां कथा अकथयन् । अनुरुद्ध आनंद आमंत्रयामास—गच्छ कुशी नगर प्रविश्य मल्लान आरोचय—'परिनिर्वृतो भगवान् यस्ये दानीं काल मन्यध्वे ।

अथ आनंद उत्थाय बुद्धस्य पादौ अभिवाद्य एकेन भिक्षुणा सार्धं क्रन्दमान' नगर प्राविशन् । तत्र अपश्यत् पंचमल्ल शतानि सस्थागारे सन्निपतितानि केनचित् करणीयेन ते मल्ला आनद आगत दृष्ट्वा उत्थाय सम्मोद्य पादौ अभिवाद्य स्थिता आनद अवोचन् "कथ भन्ते एतर्हि अतिप्रग आगत ?"

आनद प्रत्युवाच—"हितकामो व एतर्हि प्रातरागत ।तथागतो ऽतीताया रात्रौ परिनिर्वृत इति जानीथ, यस्येदानीं काल मन्यध्वे ।"

अथ एद वचन श्रुत्वा मल्लेषु न कोऽपिय न क्रन्दति, अश्रूणि विमोचयन् न वदति "कथं अतिक्षिप्र बुद्ध' परिनिर्वृत ! कथ अतिक्षिप्रं लोकचक्षुरन्तर्हितम् ॥

आनन्द तान प्रत्युवाच—"अल अल भद्रमुखा मा शोचथा । यत् जात संस्कृत तत् मा रूग्यतु मा विनश्यतु इति कुतोऽत्र लभ्यं । प्रागेव बुद्धेन आख्यात—'जातस्य ध्रुवो मृत्यु सर्वे प्रियै विप्र योग न सदा स्थिति ।

अथ ते मल्ला एकमेक ऊचुः—तेन सर्वे सन्निपत्य सर्वेण गंधमालेन बहुविधेन नृत्यगीतेन च सार्धं गच्छेम यमक शालयो (स्थानम्) ।"

शरीर पूजयन्त एकं दिनं व्यतिनामय्य बुद्धस्य शरीर पर्यंके संस्थाप्यमल्ल-कुमारै चतुष्कोणत पर्यंके उत्थाप्य धूपधूपयत पुष्पाणि विकिरन्तो नृत्येन गीतेन पूजयन्त पुरस्तिमेन द्वारेण नगर प्रविश्य वीथिषु जानपदिकै जनै सत्क्रियमाण शरीर (गृहीत्वा) पश्चिमेन द्वारेण नगरात् निष्क्रम्य उच्चविशेप स्थाने धस्याम इति विनि-श्चित्य मल्ला स्वगृह उपगम्य गधमाल चादाय नाना विधेन नृत्यगीतेन सार्धं यमक शालयो स्थाने (बुद्धस्य) शरीर पूजयन्त एक दिन व्यतिनामयामासु । बुद्धस्य शरीर पर्यंक आरोप्य मल्ला पर्यंक उच्चारयिष्याम इति । विचार्य पर्यंक उच्चारयितुम् ना शक्नुवन । तदा आयुष्मान् अनुरुद्धो मल्लान् अवोचत्—"अल भो मा आयासयथ अन्यथा एतर्हि देवताना अभिप्राय' पर्यंकोच्चारणे ?' मल्ला अवोचन्—"को देवताना अ[illegible] ?"

अनुरुद्धोऽवोचत्–वय (भगवत) शरीर गधेन माल्येन नृत्येन गीतेन सत्कुर्वन्त एक दिन व्यतिनाम्य बुद्धस्य शरीर पर्यंक आरोप्य ० धक्ष्याम इति वोऽभिप्राय । सप्त दिनानि गधेन माल्येन नृत्येन गीतेन च सत्कृत्य पूजयित्वा बुद्धस्य शरीर पर्यंक आरोप्य मल्लकुमारै पर्यंक चतुष्कोणात उत्थाप्य धूप धूपयत पुष्पाणि विकिरन्त विकिरन्तो नृत्येन गीतेन च शरीर सत्कुर्वन्त पुरस्तिमेन द्वारेण नगर प्रविश्य वीथिषु जान पदिकै जनै सत्क्रियमाण उत्तरेण द्वारेण नगरात निष्क्रम्य नदीं हि एयवतीं उप सक्रम्य मुकुट बधने चैत्ये धक्ष्याम' इति अय देवताना अभिप्राय येन पर्यंको नोच्चरति ।

मल्ला अवोचन्—'साधु भन्ते, यथा देवताना अभिप्राय तदैव भवतु ।"

अथ मल्ला एकमेक ऊचु—'आयाम वय नगर प्रविश्य रथ्या वीथीश्च सत्कृत्य मार्गाश्च सम्मार्ज्य उदकेन निषिच्य धूप धूपयित्वा इहागम्य सप्त दिनानि शरीर पूजयिष्याम अथ मल्ला सहैव नगर रथ्या वीथीश्च सत्कृत्य मार्गांच सम्मार्ज्य धूप धूपयित्वा नगरात निष्क्रम्य यमक शालयो स्थान उपसक्रम्य गध पुष्पै नृत्येन गीतेन शरीर पूजयन्त सप्तदिनानि व्यतिनामयामासु तत सायाह्न समये बुद्धस्य शरीर उत्थाप्य पर्यंके निधाय मल्लकुमारै चतुर्षु कोणेषु उद्वाह्य ध्वजै सह धूपयन्त पुष्पाणि विकिरन्तो नानाविधेन नृत्येन गीतेन पुरस्तात् पश्चाच्च अनुगच्छन्त स गौरव निन्यु । तस्मिन काले शरीरस्य उपरि त्रायस्त्रिंशा देवा मदार पुष्पाणि उत्पल ० पद्म० कुमुद० पु डरीक पुष्पाणि दिव्यानि चदन काष्ठ चूर्णानि रथ्यासु मार्गेषु सर्वत्र विकिरति दिव्यानि गीतानि च देवता गायन्ति ।

अथ मल्ला एक मेक ऊचु–तन अल मानुषं सगीतै दिव्येन सगीते नैव शरीरस्य पूजा भवतु ।

आनद. प्रत्युवाच—"सम्मुखात् मया बुद्धस्य श्रुतं सम्मुखात् बुद्धस्य प्रतिगृहीत तथा गतस्य शरीरे तथा प्रतिपत्तव्य यथा राज्ञ चक्रवर्तिन शरीरे प्रति पद्यते।"

पुनश्च त आनद अवोचन्—"कथां भन्ते!" राज्ञ. चक्रवर्तिन. शरीरे प्रति पद्यते ?"

स प्रत्युवाच—"आर्यस्य राज्ञ. शरीर प्रथम गधोदकेन स्नपयति, तस्य शरीर नवेन कार्पासेन वेष्ठयति, पचभि युगशतैः दुष्यै परिवेष्ठयंति। वेष्ठयित्वा शरीर सुवर्ण द्रोण्या निधाय तैलेन पूरयित्वा तां सुवर्ण द्रोणीं उत्थाप्य द्वितीयस्यां आयस्या महा द्रोण्यां प्रक्षिप्य तांच गध चंदन द्रोण्यां प्रक्षिप्य अन्तर्वहिरुभयथा सर्व गधानां चितक कृत्वा तस्योपरि धापयति। समाहार्य च शरीराणि (अस्थीनि) चातुर्महापथे स्तूप कारयति स्तंभ उच्छ्रापयति चित्राणि लवयंति। (ये) ते पथिका राज्ञ स्तूप द्रक्ष्यति शासने चित्त प्रसादयिष्यन्ति। (तत् तेषा) बहु हिताय भविष्यति। आनन्द! युष्माभि में शरीरं पूर्व गधोदकेन स्नपयितव्य नवेन कार्पासेन शरीर वेष्टयित्वा पंचभि दुष्य युग शतै च परि वेष्ट्य तच्छरीरं सुवर्ण द्रोण्यां सस्थाप्य तैलेन पूरयित्वा उत्थाप्य (ता) सुवर्ण द्रोणीं अपरस्या आयस्या महा द्रोण्यां प्रक्षिप्य (तां च) चंदन काष्ठेन आवृत्य अतर्वहिरुभयथा सर्व गंधान चितक कृत्वा तस्यो परि तत् (शरीर) धापयितव्य समाहार्य च शरीराण्यि (अस्थीनि) चातुर्महापथे स्तूप कारयितव्यः स्तम्भ उच्छ्रापयितव्य' चित्राणि लम्वयितव्यानि। (ये) ते पथिका बुद्धस्य स्तूपं द्रक्ष्यन्ति तथागतस्य धर्मराज मार्गे चित प्रसादयिष्यन्ति। ते पुण्यलाभिनो भविष्यति, काल कृत्वा स्वर्गं लप्स्यन्ते प्राप्स्यन्ते च मार्गं (प्राप्त) जनम्।"

अथ (ते) मल्ला एकमेक अवोचन्— "तेन हि वय नगर गत्वा समाहरेम चितक साधनानि गध पुष्पाणि कार्पासानि शव द्रोणी तैलं श्वेतानि दुष्य (युगा) नि।"

अथ मल्ला सद्दैव नगर प्रविश्य चितकसाधनानि समाहृत्य मुकुट वधन चैत्य उपसक्रम्य परिशुद्धेन गधोदकेन बुद्धस्य शरीर स्नपयित्वा नवेन कार्पासेन शरीरं परिवेष्ट्य पचभि दुष्य (युग) शतै. तद् वेष्ठयित्वा सुवर्ण द्रोण्या निधाय तैलेन प्रपूर्य (ता) सुवर्ण द्रोणीं उत्थाप्य अपरस्यां महा द्रोण्यां प्रक्षिप्य ता च चन्दन काष्ठ द्रोण्या निधाय (ता) अन्तर्वहिरुभयथा सर्वगधाना चितक कृत्वा

अथ लो- ऊ (१) नाम मल्लाना महाराजो महोल्का गृहीत्वा 'बुद्ध-शरीर अग्नि दास्याम' इति अग्नि अदात्, न चाग्नि प्रज्ज्वलित । अथ अन्येऽपि केचन मल्ल प्रमुखा उपगम्य अग्नि अदु , न पुन अग्नि प्रज्ज्वलित । अथ (आयुष्मान्) अनुरुद्धो मल्लान् अवोचत—

अल अल भद्रमुखा , यूय ज्वालयथ, न च अग्नि ज्वलति देवताना अभिप्रायेण ।"

मल्लाश्चाऽपृच्छन्— "क (पुन) भदन्त, देवताना अभिप्राय , येन अग्नि न ज्वलति ? ता अनुरुद्धोऽवोचत— देवता अभिप्रयति यत (आयुष्मान्) महाकाश्यप सार्धं पचमात्रै आकुशतै पावात जनपद (चारिका) चरमाण एतर्हि अर्धमार्गं प्रतिपन्न , तेन न ज्वलेत् अग्नि यावद् (आयुष्मान् महाकाश्यप) बुद्धस्य शरीर न पश्येत । एनमभिप्राय विदित्वा देवतानानुमन्यन्ते अग्ने ज्वलनम् ।

मल्लाश्च तेषा अभिप्राय अनुमतुं अवाञ्छन । तदा (आयुष्मान) महाकाश्यप सार्धं पचभि भिक्षुशतै पावाकुशीनगरयो अर्धे मार्गे प्रतिपन्नो भवति । अथ (खलु) मार्गेऽन्यतर निर्ग्रंथ श्रावक मन्दारपुष्प आदाय आगच्छति । अथ (आयुष्मान) महाकाश्यप दूरत एव आगच्छन्त निर्ग्रन्थ दृष्ट्वा उपसक्रम्य अपृच्छत्— कुत आगच्छसि ?

स प्रत्युवाच— कुशीनगरात आगच्छामि ।"

(आयुष्मान) काश्यप पुन अपृच्छत— अपि (आवस) जानासि

अथ तस्यां परिषदि सुभद्र. नाम शाक्य पुत्र (अभूत स) तान् भिक्षून निवार्य अवोचत्— अल आवुसा.! मा शोचथा, परिनिर्वृते भगवति सुमुक्ता. वय। तेन स्थविरेण महा श्रमणेन सर्वदा वयं उपद्रुता अभूम— इद व' कल्प्यते इदं व' न कल्प्यत इति। इतः परं वय यदिच्छाम. तत् करिष्याम ।

तत् श्रुत्वा (आयुष्मान्) महाकाश्यप दु खी दुर्मना तान् भिक्षून अवोचत— "क्षिप्र' सहरत पात्र चीवर गच्छेम इदानीं यमक शालयो आदहनात् पूर्व एव पश्येम बुद्ध [भगवन्तम्] "

अथ ते भिक्षव. श्रुत्वा महाकाश्यपस्य वचनं उत्थाय (आयुष्मान्त) काश्यप अन्वगच्छन्, उपसंक्रम्य च कुशीनगर नद्या हिरण्यवत्या तीरे दिव्य मुकुट (मुकुट बधन) चैत्य उपगता ।

अथ ते (आयुष्मन्त) आनन्द अभिवाद्य एक मन्त स्थिता आनद अवोचन्— इच्छाम एक पार्श्व शरीरस्य द्रष्टु', तद् अवश्य शक्यं च।

आनद प्रत्युवाच—"अवश्यमपि दुष्कर द्रष्टु यत बुद्धस्य शरीर गधोदकेन स्नपयित्वा पचभि कार्पास दुष्य शतैः च परिवेष्ट्य सुवर्ण द्रोण्यां आयस्यां द्रोण्यां सुगध चदन काष्ठ चितके च प्रक्षिप्य अन्तर्बहिर्धा आच्छाद्य स्थापितम्। तेन बुद्धस्य शरीर दुष्करं द्रष्टुम्।"

(आयुष्मान् महा) काश्यप' त्रि अपृच्छत् आनद' च तथैव प्रत्युवाच— "बुद्धस्य शरीर दुष्कर द्रष्टुम्।"

अथ (आयुष्मान्) महा काश्यप गध चितक उप संक्रान्त'। तस्मिन् काले द्विगुण द्रोण्यभ्यन्तरे निक्षिप्तस्य बुद्ध शरीरात् भिन्न वर्णौ पादौ निर्गतौ। द्रष्ट्वा च (आयुष्मान्) काश्यप साश्चर्य आनंद अपृच्छत्—बुद्धस्य शरीरं सुवर्ण वर्णं पादौ कथं भिन्न वर्णौ ?"

आनन्द प्रत्यवोचत्—"पूर्व एका दु.खिता वृद्धा माता उपसंक्रम्य हस्तेन बुद्धस्य पादौ स्पृष्टवती, तस्या अश्रूणि च तयोरुपरि पतितानि, तेन (एतौ) भिन्न वर्णौ।"

श्रुत्वाच तत् काश्यप. अनात्तमना गध चितके उपस्थापित बुद्ध शरीर अवदत। तस्मिन एव काले चतुर्विधा परिषद् देवताश्च उपरि एकदैव अभ्यवादयन्त। तदैव (च) बुद्धस्य पादौ अन्तर्हितौ।

अथ (आयुष्मान्) महाकाश्यप चितक त्रि प्रदक्षिणी कृत्य गाथाभि उवाच–

बुद्धोऽसमसमो लोके प्रज्ञाया यो ह्यनुत्तर. ।
वन्दे ह्यमिहाद्य नर, यो ह्य प्रतिम प्रज्ञया ॥९९॥७२॥
श्रमण मनुपम श्रेष्ठ वीतमल हि (तम्) ।
छिन्न तृष्णा शाख मुनि महर्षि देवमर्त्ययो ॥१००॥७३॥
नरेष्व प्रतिम वीर वन्देऽह (त नरोत्तमम्) ।
सहायो गमनेऽतुल शास्तार विरागणम् ॥१०१॥७४॥
निर्मल विरज चैव वन्देऽह (त नरोत्तमम्) ।
नाशयित्वाऽऽसवत्रय शून्ये शाति सुखावहम् ॥१०२॥७५॥
अद्वयमतुल (त हि) वन्दे दश बलोत्तमम् ।
सुगततमति श्रेष्ठ द्विपद श्रेष्ठ मुत्तमम ॥१०३॥७६॥
चतुरार्य सत्याभिज्ञ वन्दे ज्ञानेन तायिनम ।
श्रमणमद्वितीय (त) पापनुद धर्मनायकम् ॥१०४॥७७॥
भगवन्त निर्वृत त वन्देह नर पु गवाम ।
अक्रोधन विरजस्क सर्वदा शान्त मानसम ॥१०५॥७८॥
प्रक्षालित रजो जन्य वन्देऽहममजमार्येम ।
अनन्त प्रज्ञानेत्र गभीरममृतमिति ॥१०६॥७९॥
दुर्लभ दुष्कर ध्यान वन्देऽहमतुल (नरम) ।
सि[illegible] मनुश नन्त निर्भय वलमयुतम ॥१०७॥८०॥
चतु प्रकृति पर मारजित वन्देऽह तत ।

महाकाश्यपेन महाशील गुण सम्पन्नेन (गीयमानासु) समाप्तासु चतसृषु गाथा सु (?) बुद्धस्य चितके स्वत अग्नि प्रज्वलित । ([illegible] च) मल्ला एकमेक ऊचु 'आश्चर्य ([illegible]) अग्नि [illegible] प्रज्वलति, [illegible] ज्वाला निर्गमिता, सर्व शरीर विनाशयेत । [illegible]) [illegible] निर्वापयेम [illegible] '

[illegible] बुद्धस्य चितकात् [illegible] शाचित् जलदेवता बुद्धशासने [illegible] निर्वापित बुद्ध—चितकस्य अग्नि ।

[illegible] कुशीनाराया समन्तात् द्वादश [illegible] बुद्धस्य शरीर [illegible] । तत् शीघ्र गत्वा [illegible]

अशृण्वन् (अथ) पावयका मल्ला—"परिनिर्वृतो बुद्ध यमकशालयोः।" तेऽचिन्तयन्—"वय अपि गत्वा शरीर भाग गृह्णीयाम्। वय अपिस्व के जन पदे स्तूप कृत्वा पूजयिष्याम।"

अथ पावयका मल्ला सज्जितया चतुरंगिण्या सेनया—हस्तिसेनया, अश्व सेनया, रथ सेनया, पदाति सेनया च सार्धं कुशीनगरे दूत प्रेषयामासु. 'बुद्ध भगवान् अत्र स्थाने परि निर्वृत। स न अपि शास्ता सत्करणीय इति वय अपि अर्हाम अस्थिभाग लब्धु, वय अपि स्वके जनपदे स्तूप उत्थाप्य पूजयिष्याम।"

कुशीनगर राज प्रत्योवचत्—"एवमेव सत्य यथा यूयं वदथ। भगवान् तु अत्र (अस्माक) क्षेत्रे परिनिर्वृत। अस्माक जना स्वय पूजयिष्यन्ति दुष्कर लब्धुं भद्रमुखै याचित शरीर भाग।"

अशृण्वन् अथ अल्लकसका बुलय, राम ग्रामका कोलय, वेठ द्वीपका ब्राह्मण परिषद् कापिलवास्तवा शाक्य गण जना—"परिनिर्वृत तथागत कुशी नगरे अन्तरा यमक शालयो।"

अथ सर्वेषा जनपदाना च राजान (०।) अजात शत्रु च चतुरंगिनीं सेना—हस्ति सेना, अश्वसेना, रथ सेना पदाति सेना च उपादाय गगानदीं उत्तीर्य द्रोण ब्राह्मण आज्ञापयामास—"कुशी नगर प्रविष्य मम नाम्ना मल्लान् अभिवाद्य अल्पावाधता प्राशु विहारता च पृच्छ, कथय च, सर्वदा वय प्राति वेशिकै सह सम्मोदमाना अविवदमाना परस्पर सत्कुर्वन्त. अवसाम। श्रुत मया तथागत वो जनपदे परिनिर्वृत। अनुत्तर (स) न देव, तेन दूरत आगता (वय) लब्ध्वा अस्थिभार्गं स्व जनपद प्रति निवृत्य स्तूप उत्थाप्य पूजयिष्याम इति। तं चेद मे दास्यथ सर्वेषां जनपदाना महार्घे रत्ने (तत्र) वय अपि व सहभागिन स्याम।"

अथ द्रोण ब्रह्मण लब्ध्वा राज्ञ आदेश तद् नगर गत्वा मल्लान् उवाच—"महाराज मागध अनेक वार पृच्छति व अल्पा वाधतां प्राशुविहारतां च कथयति च सर्वदा वय प्राति वेशिकैः सह सम्मोदमाना अविवदमाना परस्पर सत्कुर्वन्त

अथ मल्ला द्रोणं ब्राह्मण अवोचन्— एष मेव सत्य यथात्ववद सि। भगवन् तु अत्र (अस्माक) क्षेत्रे परिनिर्वृत। अस्माक जना स्वय पूजयिष्यति। दुष्कर लब्धु राज्ञा याचित शरीर भाग"

अथ सर्वेषा जनपदाना राजान मन्त्रिभि सह दूरत समागत्य विवाद आरोपयामासु—"वयं दूरत आगता शांति पुरस्सर साभिवादन व याचामहे शरीर भाग। त चेद् न दास्यथ इह (न) चतुरंगिनी सेना जीवित शरीर वा न किमपि मन्यते। अलाभे बलात (त) गृहीष्याम।"

तस्मिन् काले कुशीनगरस्य जना सर्वे अमात्यै सह सन्निपत्य गाथाभ्या अवोचन—

दूरादागत्य राजानोऽभिवादन्तेऽतिनम्रकम्।
तथागतकायशेष वो दातु नोत्सहामहे ॥१०८॥८१॥
प्रेषयति भटान ते चेन ते भवति हि नो न किम्।
जीवितत्वेन युध्यामोऽत्र नास्ति हि (नो) भयम् ॥१०९॥८२॥

तस्मिन काले द्रोण ब्राह्मण तान जनान् अवोचत्—"दीर्घरात्र भद्रमुखै बुद्धस्य सम्मुखे लब्धा धर्म देशना क्षान्तिवाद च (व) मनसिच निधापित —सर्वे सत्वा भवन्तु सदा शान्तात्मान इति। कथ तर्हि बुद्ध शरीर आरभ्य विवाद परस्पर सव्रहार? तथा तेन परिनिर्वृत शरीर लब्धु कामा। तेन इह शरीर विभज्य लभध्वम् मा तु'

सर्वे इति अवोचन निश्च त विनिश्चय चक्रु।
क (तादृश) एतर्हि विभाजयितु अर्हति?'

सर्वेऽवोचन— द्रोण (न) विभाजनीं, (स न) न्यायन विभजताम्।"
अथ सर्वे राजान द्रोण आश्रित्य (तेन हि ब्राह्मण) त्व न बुद्ध शरीर

तत् श्रुत्वा दशबलस्य (भगवत) शरीर
... [illegible] एक मन्त्र धारयित्वा दूत
... राजान अज्ञान शत्रु दशबलस्य
शरीर कृत्वा (स्वय च) न चिर [illegible]

(अत्र) आगच्छतु इति एता पूजनीया आल्हादिनीं उज्ज्वलतारक सदृशां तथागतस्य दंष्ट्रा विभाजन समाप्ति काले स्वय अह ते दास्यामि ।"

अथ स उपादाय द्रोणस्य वचन राजान अजात शत्रुं उपसंक्रम्य अवोचत्— "द्रोणः (देव !) ब्राह्मण अनेक पर्यायेण व शरीरस्य अल्पा बाधता प्राशु विहारतां च पृच्छति, न चिरेण इह आगच्छतु" इति च वारं वारं कथयति, इमा पूजनीयां आल्हादिनीं उज्ज्वल तारक सदृशां तथा गतस्य दंष्ट्रा विभाजन काले स्वय अह ते दास्यामि ।"

अथ द्रोण एकेन कुम्भेन शरीराणि अष्टधा सम सुविभक्तानि विभज्य तान् सघान् अवोचत्—' लभेय अह (इमं) कुम्भम् ।" वय शरीरेषु पूजा स्तूपं उत्थापयिष्याम इति विनिश्चित्य ते क्षिप्र ददु त (कुम्भ ब्राह्मणाय) ।

अथ पिप्पलिवन ग्रामिका (मौर्या आगत्य) सघं अवोचन्—भूमौ अवशिष्ट अगार नो ददत तस्य उपरि पूजा स्तूप निर्मास्याम इति । अथ ते त ददु ।

अथ कुशीनगर का (मल्ला.) लब्ध्वा शरीर भागं के जनपदे पूजा स्तूपं उत्थापयामासु , पावेयका अल्ल कल्पका , राम ग्रामका , वेष्ट द्वीपका., कापिलवास्तवा' वैशालिका च (०) । राजा मागध. अजात शत्रु लब्ध्वा शरीर भागं स्वक जनपदं प्रति निवृत्य पूजा स्तूपान् उत्थापयामासु । द्रोण ब्राह्मण. च शरीर कुम्भ गृहीत्वा प्रति निवृत्य स्तूप उत्थापयामास । पावेयकाश्च मल्ला अगार गृहीत्वा अगारेस्तूपं निर्मापयामासु' । तस्मिन् काले तथागतस्य शरीरे अष्टौ स्तूपा निर्मिता अभूवन्, नवम कुम्भ स्तूप. दशम अगार स्तूप., एकादश (च) जन्म कालिके केशे ।

कस्मिन् काले बुद्ध' जात ? कस्मिन् काले अभिनिष्क्रान्त ? कस्मिन् काले मार्गं अभि सम्बुद्ध ? कस्मिन् च काले परिनिर्वृत ? विशाखा नक्षत्रे तथागत जात , विशाखानक्षत्र गृहाद् अभि निष्क्रान्त , विशाखानक्षत्रे मार्गं अभि सबुद्ध., विशाखा नक्षत्रे च परिनिर्वृत ।

कदा जातो द्विपदोत्तम कदा तपोवन गत ।
कदा प्राप्त अनुत्तर मार्गं कदा च निर्वाण नगर प्रविष्ट ॥११०॥८३॥
विशाखा नक्षत्रे जातो द्विपदोत्तम , विशाखा नक्षत्रे तपोवनगत ।
विशाखा नक्षत्रे प्राप्तोऽनुत्तर मार्गं, विशाखा नक्षत्रे च निर्वाण नगर
प्रविष्ट' ॥१११॥८४॥

अष्टमें दिवसे जात तथागत अष्टमे दिवसे बुद्ध गृहाद् अभि निष्क्रान्त ।
अष्टमे दिवसे प्राप्त बोधि अष्टमे दिवसे(च) परिनिर्वृत ।

जातोऽष्टमे दिवसे द्विपदोत्तमोऽष्टमे दिवसे तपोवन गत ।
अष्टमे दिवसेऽभि सबुद्धोऽष्टमे दिवसे च निर्वाण पुरप्रविष्ट ।।११२।।८५।।

द्वितीये मासे जात तथागत, द्वितीये मासे गृहाद् अभिनिष्क्रान्त । द्वितीये
मासे बोधि प्राप्त द्वितीयेमासेच परिनिर्वृत ।

द्वितीये मासे जातो द्विपदोत्तम, द्वितीये मासे तपोवन गत ।
द्वितीये मासेऽभि सबुद्ध द्वितीये मासे च निर्वाण पुरप्रविष्ट ।।११३।।८६।।

शालपुष्पै रति समृद्धैर्नानावर्णै प्रभास्वरै ।
तस्य मूले जन्मस्थान (तत्रैव) तथागत परिनिर्वृत ।।११४।।८७।।

निर्वृतो महाकारुण्यो बहु जनाभि वदित ।
सर्व भय विनिर्मुक्त निर्वाण च प्राप्तवान ।।११५।।८८।।

इति बुद्धभाषिते दीर्घागम सूत्रे ग्रथ चतुर्थ ।।



साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

<u>प्रकाशित साहित्य—</u>

१ पृथ्वीराज रासो, भाग १, २, ३ व ४
सम्पादक—कविराव मोहनसिंह — मूल्य प्रति पुस्तक १०)

२ ओझा निबन्ध संग्रह, भाग १, २, ३ व ४
स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

३ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग २
श्री अगरचन्द नाहटा

४ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, भाग ३
श्री उदयसिंह भटनागर एम० ए०

५ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज भाग ४
श्री अगरचन्द नाहटा

६ पूर्व आधुनिक राजस्थान
श्री महाराजकुमार डॉ० रघुवीरसिंह एम० ए०, डी० लिट्० एल एल० बी०
मूल्य अजिल्द ६), सजिल्द ७)

७ आचार्य चाणक्य (नाटक)
श्री जनार्दनराय नागर एम० ए०, साहित्यरत्न, विद्यालंकार — मूल्य २॥

८ तुलसीदास (काव्य)
श्री कन्हैयालाल ओझा एम० ए० — मूल्य १॥)

९ राजस्थानी भाषा
डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या एम० ए०, डी० लिट्० — मूल्य २॥)

१० नया चीन
श्री हुकमराज मेहता बी० ए०, एल एल० बी० — मूल्य [illegible]॥)

११ मालवी कहावतें, भाग १
श्री रतनलाल मेहता बी० ए०, एल-एल० बी० — मूल्य २)

१२ राजस्थानी भीलों की कहावतें व शब्द कोष — मूल्य २॥)

१३ आदिनिवासी भील — मूल्य [illegible]॥)
श्री [illegible] मेहता — मूल्य २॥)

१४ भीली लोकगीत — मूल्य २॥)

१५ राजस्थानी [illegible] — मूल्य ३॥)

१६ [illegible] राजस्थानी [illegible] — मूल्य ४)

१७ [illegible] भाग १ मू० [illegible]), भाग २ मू० [illegible]), भाग ३ मू० [illegible])

अथ-महावदान-सूत्र प्रथमम्

[काबुल निवासिना बुद्ध यशसा (४०३–४१३ ई०) चीनी–भाषायां अनुदितं तदिद

महापण्डित राहुल साकृत्यायनेन

पुनरनूदितम्]

अथ महावदान–सूत्रं प्रथमम्

[काबुल निवासिना बुद्धयशसा (४०३–४१३ ई०) चीन भाषायां अनूदित
तदिदं राहुल सांकृत्यायनेन पुनरनूदितम्]

एवं मया श्रुतं— एकस्मिन् समये बुद्धः श्रावस्त्यां देशे (विहरति), [1]पुष्प-वनशालायां महता भिक्षुसंघेन च सार्द्धं अर्द्धत्रयोदशजनशतेन।

तस्मिं समये संबहुला भिक्षवः पिण्डचारात् प्रतिक्रान्ताः, [2]पुष्पवनशालायां अन्योन्यं कथा संवदन्ति, एके हि आर्या भिक्षवः—(यानि) अनुत्तराणि प्रणीतानि भवन्ति अत्याश्चर्याणि ऋद्धयः दूरंगमानि वीर्याणि बलानि उदाराणि महान्ति, तानि अतीतानि अनेकविधानि जानाति बुद्धः निर्वाण प्रविष्टानां छिन्नदृष्टि संयोजनबंधनानां अकथंकथीनां, जानाति च तेषां बुद्धानां संख्यां प्रमाणं नाम-गोत्र-शब्दं, जातिं, वंशं, कुलं, तेषां पानं भोजनं, दीर्घं अल्पं आयुः, सुखां दुःखां वेदनाम्। तथाच ते बुद्धा एवंशीला एवंधर्मा एवंप्रज्ञा एवं प्रतिभा एवं स्थितिका। यथा त आर्या तथागता अभवन् कुशलाऽव्याकृतधर्मस्वभावा, यथार्थं जानाति। देवा आगत्य वदन्ति (तेन) जानाति इमं अर्थम्।

तस्मिन काले भगवान् प्रतिसँल्लयने स्थितः दिव्येन श्रोत्रेण विशुद्धेन पर्यवदाते-

---

[1] पा–कारेरिकुटिकायाम्।

[2] पा–कारेरिमंडलमाला।

ना श्रावीत् तेषां भिक्षूणा एव सवादम् । अथासनादुत्थाय उपसक्रम्य पुष्पवनशाला न्यषीदत् च प्रज्ञय आसने । तस्मिकाले जानन् अपि अर्थं अप्राक्षीत् वचन तान भिक्षून्—

"भिक्षव ! यूय कस्या कथाया इह सन्निपतिता ?"

तदाते भिक्षव इद वस्त्वभूद् (इति) अवोचन् । तदा भगवान् अवोचतान् भिक्षून्—

"साधु ! साधु !! यूय श्रद्धया अगार विहाय मार्गं भावयथ, सर्वं करणीयम् । तत्र भवताद्वे करणीये । प्रथम नाम आर्या धर्म-कथा, द्वितीय नाम आर्य तूष्णी-भाव । युज्यते युष्माक एव सवाद — तथागत औदारिकेन महता ऋद्ध्यनुभाववलेन जानाति सर्वं अतीतानेककल्प वस्तु । शक्य सजानीतु धर्मस्वभाव , तस्मात् जानाति । यतश्च देवा आगत्य वदति ततो जानाति ।

बुद्धस्तदा गाथाभिरवोचन्—

भिक्षवो धर्मशालाया सन्निपतिता सम्रचुरार्यकथा सवादम् ।
प्रति सल्लयनगर्भे स्थितस्तथागतो दिव्येन श्रोत्रेणाज्ञासीत् सर्वम् ॥ १ ॥
सूर्य प्रभो लोकालोको बुद्धो सविविच्य धर्मवात्वर्थम् ।
जानाति अतीतमप्यर्थं, त्रय, परिनिवृताना बुद्धानाम् ॥ २ ॥
नाम ग ज्ञाति कुल, सवेदन जन्म भोग च जानाति ।
आश्रित्य तानि तानि स्थानानि,परिशुद्धेन चक्षुषा प्रवेदयति सर्वमथ ॥ ३ ॥
नाना देवा महावीर्यवला , अन्युदारसुखाकारा ।
आगत्य प्रवदन्ति मा त्रय, बुद्धाना परिनिवृतानाम् ॥ ४ ॥
प्रवन्यन्ति कुल नाम गोत्र दु खित शकुनिस्वर सर्वं जानाति ।
देव मनुष्याणा अनुत्तर श्रेष्ठ सजानाति अतीतान बुद्धान् ॥ ५ ॥

अवोच च तान भिक्षून—

सु साधु, भगवान् भाषतां इदानीं कथा, उद्गृहीष्याम आचरिष्यामो (वयं) तद्।"

बुद्ध उवाच तान् भिक्षून्—

"शृणुत, शृणुत, सुष्ठु मनसिकुरुत इदं, अहं वो भाषिष्ये, पृथक् व्याख्यास्यामि।"

अथ ते भिक्षव समन्वमन्यन्त अववादं श्रोतुम्।

बुद्धः प्रत्युवाच तान् भिक्षून्—

"अतीत एकनवतितमे कल्पे तदाऽभूत् विपश्यी नाम बुद्ध तथागतोऽर्हन्, प्रादुरभूत् लोके। पुनश्च परं भिक्षवः! अतीत एकत्रिंशे कल्पेऽभूत् शिखी नाम बुद्धः तथागतोऽर्हन्, प्रादुरभूत लोके। पुनश्च परं भिक्षवः! तत्रैकत्रिंशे कल्पेऽभूत् विश्वभूर्नाम बुद्धः तथागतोऽर्हन्, प्रादुरभूत् लोके। अस्मिन् भद्रकल्पेऽभूत् ककुच्छन्दो नाम बुद्धः; कोनागमनो नाम च बुद्ध; काश्यपो नाम च बुद्धः। अस्मिन्नेव भद्रकल्पेऽहं उ पन्न सम्यक्-संबुद्ध।"

बुद्धोऽथ गाथाभिरुवाच—

"एकनवतितमेऽतीते कल्पेऽभूत विपश्यी बुद्ध।
तत एकत्रिंशे कल्पेऽभूत् बुद्ध. शिखीनाम ॥ ६ ॥
तत्र तस्मिन् कल्प आगात् विश्वभूस्तथागतः।
इहास्मिन् भद्रकल्पेऽनेकासंख्येये ॥ ७ ॥
अभूवन् चत्वारो महर्षयः सत्वान् ह्यनुकम्प्य आजग्मु।
ककुच्छन्दः कोनागमन काश्यप शाक्यमुनि." ॥ ८ ॥

"जानीत यूयं, विपश्यिनो बुद्धस्य काले मनुष्याणां आयु अशितिवर्षसहस्रम्। शिखिनो बुद्धस्यकाले मनुष्याणां आयुः सप्ततिवर्षसहस्रम। विश्वभ्वो बुद्धस्य काले मनुष्याणां आयुः त्रिंशद्वर्षसहस्रम्। काश्यप बुद्धस्य काले मनुष्याणा आयु विंशतिवर्षसहस्रम्। एतर्हि माध्यागते लोके मनुष्याणां आयु वर्षशतं अल्पना गत भूय प्रत्तीय।"

तदा बुद्धो गाथाभिरप्युवाच—

विपश्यिकाले नराणां आयु. चतुराशीतिसहस्रम्।
शिखि बुद्धस्य काले मनुष्यायुः सप्ततिवर्षसहस्रम ॥ ६ ॥

विश्वभूकाले मनुष्यायु षष्ठिवर्षसहस्रम् ।
ककुच्छन्दकाले मनुष्यायु चत्वारिंशद्वर्षसहस्रम् ॥ १० ॥
कोनागमस्यकाले मनुष्यायु त्रिंशद्वर्षसहस्रम् ।
काश्यप बुद्धकाले मनुष्यायु विंशद्वर्षसहस्रम् ॥ ११ ॥
तथैतर्हि मे काले मनुष्यायु नाधिक शतात्" ॥

"विपश्यी बुद्ध आगात् क्षत्रिय गोत्रेण कौडिन्य । शिखी बुद्ध, विश्वभू बुद्ध अपि गोत्रेण तथा । ककुच्छन्द बुद्ध आसीद ब्राह्मण गोत्रेण काश्यप कोनागमनो बुद्ध ,काश्यपो बुद्ध अपि कुलेन गोत्रेण तथा । अह एतर्हि तथागतोऽर्हन् अस्मि कुलेन क्षत्रिय , गोत्रनाम्ना च वदन्ति गोत (इति) "

बुद्धस्तदागाथाभिरुवाच—

विपश्यी तथागत, शिखी, विश्वभू ॥ १२ ॥
इमे त्रय सम्यक् सबुद्ध आसन गोत्रेण कौण्डिन्या ॥
अन्ये त्रय तथागता आमन् गोत्रेण काश्यपा ॥ १३ ॥
अह इदानी अनुत्तर श्रेष्ठ , शास्ता सर्वेषा सत्वानाम् ॥
देव-मनुष्यादीना वशी गोतमो नाम ॥ १४ ॥
प्रथमा त्रय सम्यक्-सबुद्धा आसन् वशेन क्षत्रिया ।
अन्ता त्रय तथागता आसन् वशेन ब्राह्मणा ॥ १५ ॥
अहमिदानी अनुत्तर श्रेष्ठ वशी अस्मि क्षत्रिय ॥

तदा तस्मिन् स्थाने प्राप सबोधिमनुत्तराम् ।
शिखी पुण्डरीकवृत्ते प्राप[1] मार्गं निरोधं-ससमुदयम् ॥ १७ ॥
विश्वभूः तथागतो निषद्य शालवृक्षाधः ।
लेभे विमोक्षज्ञानं ऋद्धिं अप्रतिहताम् ॥ १८ ॥
क्रकुच्छन्दस्तथागतो निषद्य शिरीषवृक्षाधः ।
सर्वे विशुद्ध प्रज्ञा विगतक्लेशा विगतग्राहा' ॥ १६ ॥
कोनागमो मुनि निषद्योदुम्बरवृक्षस्याध. ।
तत्रैव तस्मिन् स्थाने परिजहौ सर्वं रागं दु ख सौमनस्यम् ॥ २० ॥
काश्यपस्तथागतो निषद्य न्यग्रोधवृक्षाधः ।
तत्रैव तस्मिन् स्थाने परिजहौ सर्वं ससमुदयम् ॥ २१ ॥
अह एतर्हि शाक्यनरो निषद्याऽश्वत्थवृक्षे ।
तथागतो दशवलोऽनुत्तरो परिजहौ सर्वान् संस्कृतानर्थान् ॥ २२ ॥
विध्वस्य मारपरिषदसर्वंपरिषत्सु दिशाभि महालोकम् ।
सप्त बुद्धा वीर्यबल (-युता) भासमाना प्रभया परिजहुस्तम. ॥ २३ ॥

पृथक्पृथक् निषद्य नानावृक्षेषु तत्राभूवन संबुद्धा. ।

"विपश्यी तथागतः त्रिषु सन्निपातेषु दिदेश धर्मम् । प्रथमे श्रावक सन्निपातेऽभूवन् अष्टषष्ठिपुरुषशतसहस्र, द्वितीये श्रावक सन्निपातेऽभूवन् पुरुपशतसहस्रं, तृतीये श्रावकसंन्निपातेऽशीतिपुरुष सहस्रम् । शिखी तथागतोऽपि त्रिपु सन्निपातेपु दिदेश धर्मम् । प्रथमे श्रावकसन्निपातेऽभूवन् पुरुपशतसहस्रं, द्वितीये श्रावक-सन्निपातेऽभूवन् अशीतिपुरुपसहस्र , तृतीये श्रावकसन्निपातेऽभूवन् सप्ततिपुरुपसहस्रम् । विश्वभूः तथागतो द्वयो. सन्निपातयो' दिदेश धर्मम् । प्रथमे श्रावकसन्निपातेऽभूवन् सप्ततिपुरुप सहस्र ,द्वितीये श्रावक सन्निपातेऽभूवन्षष्ठिपुरुप सहस्रम् । क्रकुच्छन्दस्तथागत एकस्मिन् सन्निपाते दिदेश धर्मम् । श्रावका चत्वारिंशत्पुरुपसहस्रम् । कोनागमस्तथागत एकस्मिन् सन्निपाते दिदेश धर्मम् । श्रावका' त्रिंशत्पुरुपसहस्रम् । काश्यपस्तथागत एकस्मिन् सन्निपाते दिदेश धर्मम् । श्रावका विंशत्पुरुपसहस्रम् । अहं एतर्हि एकस्मिन सन्निपाते धर्ममदिशम् । श्रावका अर्द्धत्रयोदशपुरुप-शतम् ।"

---

१ पोम इतिपाठ ।

विनायको शास्ता सत्त्वप्रभावक एकस्मिन् श्रावकसघसन्निपाते ।
कोनागमस्तथागतोऽनुत्तरोऽप्येवम् ॥ २६ ॥
अरुणाभ काचनपर्णकाय सर्वाकारपरिपूर्ण ।
एकस्मिन् श्रावकसंघसन्निपाते दिदेश प्रणीत उत्तम धर्मम् ॥ ३० ॥
काश्यपो द्विदायाद् एकमना असमूढचित्त ।
द्विर्भापी अनाकुलितादुर्वल एकस्मिन् श्रावकसघसन्निपाते ॥ ३१ ॥
कारुणिक उपशातिचित्त शाक्यवश श्रमणोत्तम ।
देव देवोऽतिश्रेष्ठोऽह एकस्मिन् श्रावकसघसन्निपाते ॥ ३२ ॥
तस्मिन् समागमेऽह समदर्शय अर्थं अदिश सुविशुद्ध वादम् ।
चित्ते नित्य सुख-सौमनस्यी आस्रवक्षयश्च भवक्षय ॥ ३३ ॥
विपश्यी शिखी त्रिपु विश्वभू बुद्ध द्वयो ।
चत्वारो बुद्धा एकैकस्मिन् ऋषिसमागमे निदिशु ॥ ३४ ॥

"तदा विपश्यिबुद्धस्याभूता द्वौ श्रावकौ एक [1]खण्डो नाम-द्वितीय [2] यशो नाम । सर्व श्रावकाना प्रथमौ । शिखिबुद्धस्याऽभूतां द्वौ श्रावक सभवो नाम सर्वेपा श्रावकाना प्रथमौ अग्र्यौ । विश्वभू बुद्धस्याभूता द्वौ श्रावकौ, एक सोणो नाम, द्वितीय उत्तरो नाम, सर्वेपा श्रावकाना प्रथमौ । ककुच्छन्द बुद्धस्याऽभूता द्वौ श्रावकौ, एक सजीवो नाम, द्वितीय विधुरो नाम, सर्वेपा श्रावकाना प्रथमौ । कोनागम बुद्धस्याभूता द्वौ श्रावकौ, एक [3]भूयोसो नाम, द्वितीय उत्तरो नाम[4] सर्वेपा श्रावकाना प्रथमौ । काश्यप बुद्धस्याभूता द्वौ श्रावकौ, एक तिष्योनाम, द्वितीयो भारद्वाजो नाम-सर्वश्रावकाना प्रथमौ । एतर्हि मम द्वौ श्रावकौ, एक सारिपुत्रो नाम, द्वितीयो मौद्गल्यायनो नाम, सर्वेपा श्रावकाना प्रथम ।"

बुद्धस्तदा गाथाभिरुवाच—

संजय-विधुरौ ककुच्छन्दस्य श्रावकौ ।
भूयोसोत्तरौ कोनागमस्य श्रावकौ ॥ ३७॥
तिष्य-भारद्वाजौ काश्यपस्य श्रावकौ ॥
सारिपुत्र मोद्गल्यायनौ ममस्तोऽत्र श्रावकौ ॥ ३८ ॥

"विपश्यिनो बुद्धस्योपस्थाक शिष्योऽभूत् अशोको नाम। शिखिबुद्धस्योपस्थाक शिष्यः क्षेमंकरो नाम। विश्वभू बुद्धस्योपस्थाकशिष्य उपशान्तो नाम। ककुच्छन्द बुद्धस्य उपस्थाक शिष्योऽभूत् सुबुद्धि नाम। कोनागम बुद्धस्योपस्थाक श्रावकोऽभूत् स्वस्तिजो नाम। काश्यपबुद्धस्याभूत् उपस्थाक श्रावकः सुभवः[1] नाम। ममोपस्थाक श्रावक आनन्दोनाम। "

बुद्धस्तदा गाथाभिरुवाच—

अशोकश्च क्षेमंकर उपशान्तः सुबुद्धिः ।
स्वस्तिजः सुभवश्चानन्दो भवति सप्तमः ॥ ३९ ॥
एते सन्तिबुद्धोपस्थाक सर्वार्थाधिकार-परिपूर्णाः ।
रात्रिन्दिवं अतद्रिता आत्महिते परहिते ॥ ४० ॥
ते सप्त कुशलाः श्रावकाः प्राप्ताः बुद्धस्य-वाम दक्षिणम् ।
प्रीताश्चोपस्थाकाः शान्ता निरुद्धाः परिनिर्वृताः ॥ ४१ ॥

विपश्यि बुद्धस्या पुत्रोऽभूत् वर्ग-भिक्ष-नाम; शिखिबुद्धस्य पुत्रोऽभूत् अप्रमाणो नाम, विश्वभूबुद्धस्य पुत्रोऽभूत वरबोधिर्नाम; ककुच्छन्द बुद्धस्य पुत्रोऽभूत् उज्जयो[2] नाम; कोनामग बुद्धस्य पुत्रोऽभूत् समववादको नाम् काश्यप बुद्धस्य पुत्रोऽभूत प्रसेनो[3] नाम; एतर्हि मम पुत्रोऽस्ति राहुलो नाम। "

बुधस्तदागाथाभिरुवाच-

Squire fing अप्रमाणौ पुत्रौ वरबोधिश्च संजय ।
समववादक प्रसेन. च राहुल सप्तम ॥ ४२ ॥
इमे ते महर्द्धिका. पुत्रा सर्वे बुद्धकुलोपगा.[4] ।

१ सर्वमित्र इति पा ।
२ उपरि—विजय इति शब्दार्थ ।

विदितधर्मा...दाना , आर्यधर्मे (च) निर्भया ॥ ४३ ॥

"विपश्यि बुद्धस्य पिता बन्धुमान्, क्षत्रिय राजवंश, माता बन्धुमती नाम, राजधानी बन्धुमती नाम नगरी ।"

बुद्धस्तदा गाथयोवाच—

विपश्यिन पिता बन्धु , माता बन्धुमती (तथा) ।
बन्धुमन्नगर तत्र बुद्धो धर्मं समादिशत् ॥ ४४ ॥

"शिखिबुद्धस्य पिताऽरुणो नाम क्षत्रियो राजकुलीन , माता प्रभावती नाम, राजधानी अरुणवती नाम ।"

बुद्धस्तदा ग थयोवाच—

"शिखिनो जनकोऽरुणो माता नाम प्रभावती ।
अरुणवती नगर शीलबलेन परशत्रुजित ॥ ४५ ॥"

"विश्वभू बुद्धस्य पिता सुप्रीतो नाम क्षत्रियो राजवशिक , माता यशोवती नाम, नगर अनुपम नाम ।"

बुद्धस्तदा गाथयोवाच—

"विश्वभू बुद्धजनक सुप्रीत नात्रवशिक ।
माता यशोवती (नाम) नगर नाम (हि)अनूपमम् ॥ ४६ ॥

"क्रकुच्छन्द बुद्धस्य पिता 'मजुशीलो नाम, ब्राह्मवशिक , माता विशाखा नाम, क्षेमो नाम राजाऽनुगतो राजा, क्षेमवती नाम हि नगरम ।

बुद्धस्तदा गाथयोवाच-

मजुशीलो द्विज (जात) विशाखा नाम जननी ।
क्षेमो नाम राजा (च) वसति क्षेमवतीपुरे ॥ ४७ ॥

'कोनागम बुद्धस्य पिता 'महाशीलो नाम ब्राह्मण , माता 'विनया नाम, तदा राजा शुभो नाम स्कन्धार , राज नामत शुभवती नाम नगरम ।"

बुद्धस्तदा गाथयोवाच—

"विजया जननी नाम महाशील द्विजः [1](पिता) ।
शुभो नाम (तदा) राजा वसति शुभवती पुरे ॥ ४८ ॥

"काश्यपबुद्धस्य पिता ब्रह्मशीलो नाम, ब्राह्मणवंशिकः, माता धनवती नाम। तस्मिन् काले [2]किकी नाम राजा (उपस्थाकः) राजधानी वाराणसी नाम नगरम् ।"

बुद्धस्तस्मिन् काले गाथयोवाच—

"माता धनवती नाम ब्रह्मशीलो ([1])द्विजः (पिता) ।
तदा राजा ([2])किकी नाम पुरी वाराणसी (तथा)॥ ४९ ॥

"मम पिता शुद्धोदनो नाम क्षत्रियो राजवंशिकः, माता महामायानाम, राजधानी [3]कपिलवस्तु नाम नगरम् ।

बुद्धस्तदा गाथयोवाच—

"महामायेति जननी पिता शुद्धोदनो [4]नृपः ।
बहु[5]धनजने देशे ताभ्यां जातोऽहं (आत्मजः) ॥ ५० ॥

"इमे ते सन्ति बुद्धाः । (ते) हेतु प्रयत्यतः नाम-गोत्र-कुलानां गत्यायु-स्थानतः कथ अभवन् (इति) इदं श्रुत्वा विज्ञः पुरुषो हेतु प्रत्ययतः च न (भवति) सु प्रीति प्रामोद्यप्राप्तः सुख- सौमनस्य चित्तः ।

तस्मिन् काले भगवान् प्रोवाच तान् भिक्षून्—

अभिलपाम्यहं इदानीं पूर्वनिवासज्ञानं वक्तुं अतीतानां बुद्धानां विषये; इच्छेत यूयं श्रोतुं न (वेति) " ?

---

[1] ब्राह्मण-इति शब्दार्थः ।

[2] पो०रो०पी-इति चीनोच्चारम् ।

[3] कपिलव इति ची० ।

[4] क्षत्रिय ची० ।

[5] बहुधने बहुजने

ते भिक्षव प्रत्यूचु—

"एतस्येव इदानीं काल । सुखेनेच्छाम श्रोतुम् ।"

बुद्ध उवाच तान्—

"साधु ! साधु ! ! भिक्षव ! सुष्ठुमनसि करोथ तद् अह वो विभज्य भाषिष्ये । भिक्षवः ! विज्ञातव्या तेषा बुद्धाना ¹धर्मता । विपश्यी बोधिसत्त्व तुषित देवर-लोकगत् च्युतोऽवाक्रमत् मातृकुक्षौ, दक्षिणपार्श्वत प्रविश्य, सम्प्रजान् अमूढ । तत्र तदा पृथ्वी समकपत, महान्तोऽवभासा प्राकाशन्त, सर्व-लोकधातु अवभासयन्त , यत्र चन्द्रसूर्यो न प्राप्नुत , (तत्) सर्वं स्थान आच्छादयन्त उदारेण अवभासेन । निरय-सत्वा (अपि) एकैकस्यान्योन्य पश्यन्ति, सजानन्ति स्वकीया स्थितिं तदाऽस्मिन् अवभासे । पुनश्चपर-दृश्यन्ते मार-प्रासादा सर्वे देवा शक्रो ब्रह्मा श्रमणा ब्राह्मणा चान्ये सत्त्वा सर्वे आच्छादिता उदारेणावभासेन । सर्वे देवलोका स्वभावतोऽदर्शना अवभासन्ते । बुद्धस्तदा गाथाभ्यामुवाच—

नभस्यालम्बते मेघो भाति विद्युत् अधोदिवि ।
विपश्यी भासयन भासा कुक्षौ चापि समाविशत् ॥ ५१ ॥
सूर्येन्द्वनुपगतमप्यनावृत न प्रभासा ।
कुक्षौ तिष्ठति विशदोऽस्रचित ,इति धर्मता सर्वबुद्धानम् ॥ ५२ ॥

"भिक्षव ! सेवें विज्ञेय सर्वबुद्धाना धर्मता । विपश्यी बोधिसत्व तदा स्मरन् सम्प्रजानन् अमूढो मातृकुक्षौ अवाक्रमन् । चत्वारो देवपुत्रा खड्ग हस्ते गृहीत्वा रक्षति तस्य मातरम् । मनुष्या अमनुष्याश्च न प्रभवन्ति विहिंसितुम् । अयमस्ति शाश्वतो धर्म (धर्मता) ।"

बुद्धस्तदा गाथाभिरुवाच—

चतुर्दिश चत्वारो देवपुत्रा ईश्वरा वशिन ।
देवानामिन्द्रेण शक्रेण प्रेषिता सुरक्षितो बोधिसत्त्व ॥ ५३ ॥
करासिधारिणो नित्य अनिर्गच्छन्तो रक्षन्ति ।
मनुष्या अमनुष्या न हिंसन्ति, इय सर्वेषा बुद्धाना धर्मता ॥ ५४ ॥

देवा अवभासमाना रक्षन्ति, देवकन्या यथा रक्ष्यंते देवेषु ।
सुखसम्पन्ने कुले, इयं सर्वेषां बुद्धानां धर्मता" ॥ ५५ ॥

उवाच च—

"भिक्षवः ! सर्वेषां बुद्धाना धर्मता (एषा)। विपश्यी बोधिसत्त्वं तुषितात् देवलोकात् मातृकुक्षौ विज्ञानं अवाक्रमत स्मरन् संप्रजानन् असंमूढ' । मातुःकाय. (तदा) चेसुरसं स्थितो असंबाधितः; प्रज्ञा वर्द्धते। मातावलोकयंती स्वयं पश्यति गर्भम् । बोधिसत्त्वस्य कायः सर्वेन्द्रियपरिपूर्ण, यथालोहितं सुवर्णचूर्णं मल-रजोविरहितं, चक्षुष्मन्त. पुरुषः तत् तथा पश्यन्ति परिशुद्धे स्फटिके अन्तर्वहि. परिशुद्धं स्वच्छं, सर्वावरण-कलुषविरहितम्। भिक्षवः ! सर्वं इदं अस्ति बुद्धानां धर्मता ।"

तस्मिन् काले भगवान् गाथाभ्या उवाच—

"यथाशुभो वैदुर्यमणि' सूर्यचंद्र प्रभेव स्वयं ।
जातिमान्, (तथा) तिष्ठति मातृकुक्षौ, तस्य माताऽसंवाधा ॥ ५६ ॥
प्रज्ञया भवति वर्द्धमाना, सुवर्णविंवं गर्भं पश्यति ।
माता गर्भिणी सुसुखिनी, इयं बुद्धाना धर्मता ॥ ५७ ॥

बुद्ध उवाच—

"भिक्षव. ! विपश्यिनि बोधिसत्त्वे तुषितात् देवलोकात् च्यवित्वा मातृकुक्षिं अवक्रमति स्मरति सप्रजानति अमूढे, मातुर्मनः न सर्वरागचित्तं, न रागाऽग्निना तत् परिदग्धं (भवति)। इयं अस्ति सर्वबुद्धानां धर्मता ।"

तस्मिन् काले च भगवान् गाथाभ्यां उवाच—

"बोधिसत्त्वे तिष्ठति मातृकुक्षिं देवदेवे पुण्यसयुते ।
तन्मातुश्चित्त शुचि निर्मलं सर्वरागचिन्ता विरहितम् ॥ ५८ ॥
सर्वकामरागेच्छयाऽमलिनमसमुपगतम् ।
नभवति कामाग्निना दह्यमानं, सर्व बुद्धानां माता नित्यं परिशुद्धा ॥५९॥

बुद्ध उवाच—

"भिक्षव ! बुद्धाना धर्मता (एषा)। (यदा) विपश्यी बोधिसत्त्व' प्रथमं तुषित देवलोकात् च्यवित्वाऽवाक्रमत् मातृकुक्षौ स्मरन् संप्रजानन् अमूढः। तस्य माता

समाचरति पंचशीलं, ब्रह्मचर्यं पूर्णं शुद्ध निर्मलम् गृह्णाति। अतिश्रद्धा दयापन्नाऽनुकंपिका सर्वकुशलकारिणी सुखिनी निर्भया । काय विहाय जिवितात् च्यवित्वा उत्पद्यते तुषितेषु देवेषु। इय अस्ति धर्मता ।"

तस्मिन् काले च भगवान् गाथयोवाच—

"समाचरति मानुषे उत्तमे काये वीर्य-शील परिपूर्णा ।
पश्चात् गृह्णाति देवकाय इद प्रत्यया नाम बुद्धमाता ॥ ६० ॥

बुद्ध उवाच—

"भिक्षव ! एषा बुद्धाना धर्मता । विपश्यी बोधिसत्त्व स्वोपपत्तिकाले दक्षिणपार्श्वतो निश्चक्राम । पृथिविकंपोऽभूत्, अवभासेन सर्वं अवभासितम्। प्रथम-गर्भप्रवेशकाले तमोमय स्थान (अपि) न (किमपि) अवभासेन अनाच्छादितम्। एषाऽस्ति धर्मता ।

तस्मिन् काले च भगवान् गाथाभ्या उवाच—

राजपुत्रोपपत्तौ पृथिवी चकंपे महद्भवभासेन न किमप्यनाच्छादितम् ।
अय धातुश्च परोवातु ऊर्ध्वमधश्च सर्वा दिश ॥ ६१ ॥
भासमानो प्रभा ददाति शुद्धेन हेतुना, परिपूर्णो देवकायो ।
प्रशातो भवति शुद्धवाक् उच्यते बोधिसत्त्वो नाम" ॥ ६२ ॥

बुद्ध उवाच—

"भिक्षव ! (एषा) बुद्धाना धर्मता। विपश्यी बोधिसत्त्व तत्र स्वोपपत्तिकाले दक्षिणपार्श्वतो निश्चक्राम स्मरन् सम्प्रजानन् अमूढ । तदा बोधिसत्त्वमाता (अभूत्) हस्ते वृक्षशाखा गृहीत्वाऽनिषण्णाऽनिपन्ना । तदा चत्वारो देवपुत्रा हस्ते गृहीत्वा गच्छन्ति, तत्र मातु पुरस्तात् अस्थु वदमाना-मातु ! देवमात ! इदानीं उत्पन्न आर्यपुत्र, मा भव दुर्मनस्काम । एषाऽस्ति धर्मता । "

तस्मिन् काले च भगवान् गाथयोवाच—

"बुद्धमाता अनिषण्णा (अ-) निपन्ना शीलसम्पन्ना ब्रह्मचर्यचारिणी ।
प्रसवति वर निरुत्तम देवमनुष्ये निषेवित (पुत्रम्)" ॥ ६३ ।

कायः परिशुद्धोऽम्रक्षित मलेन श्लेष्मणा। यथा भवति हिमजन (?)-परिशोधिता प्रभास्वरा मुक्ता श्वेत-कौषेयोपरि निक्षिप्ता न म्रक्षते उभयत' शुद्धत्वात्, बोधिसत्त्वोऽपि गर्भे एवम् । इय अस्ति धर्मता।"

तस्मिन् काले च भगवान् गाथयोवाच—

"यथा शुद्धा प्रभास्वरामुक्ता कौषेये निक्षिप्ताऽम्रक्षिता।
बोधिसत्त्वो गर्भे निष्क्राति काले (तथा) परिशुद्धोऽम्रक्षितः ॥ ६४ ॥

बुद्ध उवाच—

"भिक्षव ! एषा बुद्धाना धर्मता। विपश्यी बोधिसत्त्व तत्र स्त्रोपपत्तिकाले दक्षिणपार्श्वतो निश्चक्राम स्मरन् संप्रजानन् अमूढ। दक्षिणपार्श्वतो निष्क्रम्य भूमौ निपत्त्यागमत् सप्तपदानि। अमनुष्या अग्रहीषु तदा। सर्वतो विलोक्य चतुर्दिशं, उत्थाप्य हस्त च भाषते— ऊर्ध्वं देवात् अधो देवात् अहमेव अस्मि अग्रः, इच्छामि विमोचयितु' सत्त्वान् जाति-जराव्याधि-मरणत। एषा धर्मता।"

तस्मिन् काले भगवान् गाथाभिरुवाच—

"सिंहो यथा गच्छति विलोकयन् सर्वत चतुर्दिशम्।
निपत्त्यभूमौ नरसिंहोऽप्येवं सप्तपदानि अगमत ॥ ६५ ॥
महानागो यथागच्छति विलोकयन् सर्वत' चतुर्दिशम्।
निपत्त्यभूमौ नरनागोऽप्येवं सप्तपदान्यगमत् ॥ ६६ ॥
द्विपदोत्तम उपपत्तिकाले सुख अगमत सप्तपदानि।
विलोक्य चतुर्दिश ननाद-नाशयिष्यामि जाति-मृत्यु-दु'खम् ॥ ६७ ॥
स्व प्रथमोपपत्तिकाले स्वत न उत्तमं (न) उत्तम (न) उत्तमच।
पश्यामि, जातिमृत्युमूलं अयं सर्वान्तिम काय ॥ ६८ ॥

भगवानुवाच—

"भिक्षव ! एषा बुद्धाना धर्मता। विपश्यिनो बोधिसत्त्वस्य स्मरत' सप्रजानतोऽमूढस्य दक्षिणपार्श्वत, निष्क्रातस्य स्त्रोपपत्तिकाले द्वे स्रोतसी प्रादुरभूता, एकं शीतल एक उष्ण, तस्य स्नापनार्थम्। एषा धर्मता।"

तस्मिन् काले भगवान् गाथाभ्यामुवाच—

द्विपदोत्तमस्योपपत्तिकाले स्वयं निश्चक्रमतु स्रोतसी द्वे।
बोधिसत्वोपयोगार्थं सर्वनेत्रमस्नापयत् परिशुद्धम् ॥ ६९ ॥

द्वे स्रोतसी स्वयमुद्भिन्ने, तत्र जलसुपरिशुद्ध निर्मलम् ।
एक उष्ण एक शुद्धशीतल सर्वप्रज्ञ (तत) अस्नापयन् ॥ ७० ॥

प्रथमो राजकुमारो जात (इति) बन्धुमान् राजा नैमित्तिकान् सर्वविद्या-(=मन्त्रा)-चार्यान आमन्त्र्य आज्ञापयाचकार—पश्यत राजकुमारं, बुध्यत तस्य भाग्यं दौर्भाग्य । तदा ते नैमित्तिकाचार्या प्राप्य आज्ञा (तस्मिन्) क्षणे उपसृत्य अवतार्यवस्त्र, अपश्यन् सपूर्णानि लक्षणानि । (अथ) व्याचक्रु वचनं—यस्य भवन्ति इमानि लक्षणानि द्वे एव गती (तस्य) हि युक्ते, निस्सशयम् । सचेत् आगारे वसति राजा भविष्यति चक्रवर्ती चतुर्णा लोकाना, चतुरगसेनासपन्नो करिष्यति सद्धर्मेण राज्य, न अन्यायेन, लोक अनुकपमान, तस्य सप्त रत्नानि (निधय) आगच्छन्ति । (पर) सहस्र पुत्रा शूरा बलिन बाह्यशत्रुजये समर्था । सेना दड अनुपयुज्य पृथिवीं शमेन (शास्ति) । सचेत् अभिनिष्क्रम्य आगारात्, शिक्षते मार्गं, सबुद्धो भविष्यति दशबल परिपूर्ण । तदा ते नैमित्तिका आचार्या राजान एव वचन ऊचु—(महा-) राज! उत्पन्नस्ते पुत्रो द्वात्रिंशल्लक्षण-सहित द्वे गती (अस्य) युक्ते अवश्य निस्सशय । (अय चेत्) आगारे वसति भविष्यति चक्रवर्ती आर्यराजा । स चेत् आगारात् निष्क्रमति अवश्य भविष्यति सबुद्ध दशबलपरिपूर्ण ।"

बुद्धस्तदा गाथाभिरवाच—

"शतपुण्यो राजसुत प्रसूत, निमित्ताचार्या ऊचुरेतत् ।
यथेद भवति ग्रथे, गती द्वे युक्ते निस्सशयम् ॥ ७१ ॥
सचेदय इच्छति गेह (-वास) राजा भविष्यति चक्रवर्ती ।
सप्तरत्नाभा रत्नानि स्वय राजान उपगमिष्यन्ति ॥ ७२ ॥
सत्सुवर्ण (-मय) सहस्रारसपूर्ण, परित सुवर्ण जालबद्ध ।
चक्र उत्पतनसमर्थ सर्वग तस्मात् दिव्यचक्र नामास्ति ॥ ७३ ॥
सुसस्त सप्तस्थानुरक्त ऋज्वो विशालो श्वेतो यथा हिम ।
नाग आकाश उत्पतनसमर्थ द्वितीय नाम हस्तिरत्नम ॥ ७४ ॥

रुपं शब्दः गंधोरस. स्पर्शः न (अस्ति) समोऽस्याः किंचिद् ।
सर्वांगनाना प्रथमा (चसैषा) (इदं) पंचमं रत्नं समुच्यते ॥ ७७ ॥
लभते राजा वैदुर्यरत्नं मुक्ता हरितपाषणं (ged) च सर्वरत्नम् ।
सन्तुष्टश्च लभते (इदं) षष्टं रत्नं समुच्यते ॥ ७८ ॥
राजा चक्रवर्ती यथेच्छति सेना द्रुत (तथा) यात्यायाति ।
राजा चक्रवर्ती यथाद्रुतं इच्छति सेना (-पति.) यात्याति ।
राजेच्छानुसार द्रुत (इद) सप्तमं रत्नं समुच्यते ॥ ७९ ॥
इमानि सप्त रत्नानि यानि चक्रं हस्ती शुद्धश्वेतोऽश्व. (च) ।
वैदुर्यमणि मुक्ता स्त्री (च) सेनापति[1]रत्नं भवति सप्तमम् ॥ ८० ॥
तान् पश्यत्यक्लान्त पचकामगुणान् स्वय भुञ्जमान ।
गज इव खंडित रज्जुवंधनो निष्क्रम्यागारात् भवत्विबुद्ध ॥ ८१ ॥
राज्ञो भवति तादृश पुत्रो द्विपदोत्तम. नर (ोत्तम) ।
तिष्ठति लोके प्रवर्त्य धर्मचक्र मार्गगुणोष्वप्रमादी ॥ ८२ ॥

तस्मिन् काले पिता राजा साग्रहं भूय त्रि पुनः अप्राक्षीत् लक्षणाचार्यान्- "यूय पुनरपि पश्यत कुमारस्य द्वात्रिंशत लक्षणानि । तेषा नामादि किम् ?"

तदासर्वे लक्षणाचार्यो एकवारं विवृत्त्य कुमारस्य वस्त्रं अवादिषु'—

"द्वात्रिंशत् लक्षणानि (इमानि)-प्रथमं-पादःसम सुखकर ,पादतलं सम परिपूर्णं भूमौ सुखगमम् । द्वितीय-पादतल लांछित चक्रेण सहस्रारेण परिपूर्णेन,दीप्यमानमन्योऽन्यम् । तृतीय-हस्त पादागुलयोराज हसस्येव । तुर्थ-चहस्त-पादा मृदुका द्विव्यवस्त्रस्येव पंचमं-हस्तपादागुलयो दीर्घा सूक्ष्मा (=लीना) अप्रतिमा । पष्ठ-पादपार्ष्णिरायता दृश्यतेऽक्लाता । सप्तम-एणिजघऊर्ध्वमध. ऋजु. । अष्टम कु चितनद्ध अस्थि,अस्थि-सधिः अन्योन्य-सयुक्ता अर्गलयोजनस्येव । नवम-कोपावहित वस्ति-गुह्यं अगजातं अश्व (-स्य) इव गुह्यम् । दशमं- स्थितक परिमृशति पाणिना जानुकं उपरि । एकादशम-- एकैकलोमकूप , एकैकानि लोमानि जातानि अस्यलोमानि दक्षिणावर्तानि अजननील-(Ros)-वर्णानि । द्वादशम- केशा दक्षिणावर्तकजाता — सुवर्णवर्णा कुंडलिता । त्रयोदशम- काय सुवर्ण वर्ण., चतुर्दशम- छविः सूक्ष्मा

---

१ परिणायक इति पाल्याम् ।

मृदुका नोपलिप्यते रजोजल्येन। पचदशम–– उभयस्कंध समवर्त सुपरिमडल। षोडश वक्षो भवति स्वस्तिकाक्षरम्। सप्तदश–कायो दीर्घ पुरुष द्विगुण। अष्टादश– सप्तसु स्थानेषु सम-परिपूर्ण। ऊनविंश–कायो दीर्घाऽऽयाम समानो [1]न्यग्रोधवृक्षस्येव। विंश–सिंह–पूर्वांग[2]काय। एकविंश–सम-वक्षो भाग सन्नद्ध सिंहस्येव। द्वाविंश–मुखे चत्वारिंशद्दन्ता। त्रयोविंश–समनद्ध समसम। चतुर्विंश– लग्नदन्तोऽविवर (-दन्त)। पचविंश–शुद्धश्वेता भास्वर-दन्त। षड्विंश–सुपरिशुद्धकठ, यन्नानारस भुक्ते न किमपि अप्राशु। सप्तविंश–प्रभूतजिह्वो वाम दक्षिण कर्णं (जिह्वया) लेढि। अष्टाविंश–स्वच्छ विस्पष्ट-ब्रह्म-स्वर। ऊनत्रिंश– अभिनीलवर्णनेत्र। त्रिंश– वृषभराजस्येव ऊर्ध्वमक्ष उभयतो दीर्घनेत्र। एकत्रिंश–केशा विशाल-स्वच्छा भास्वरा मृदुस्निग्ध सूक्ष्मा एक वितस्ति (?) दीर्घायता, मुक्तास्तदा दक्षिणावर्तो करविकाया शन्मुक्ताया इव। द्वात्रिंश–शीर्षे भवति मांसपुज (–उष्णीषम्)।"

तदा गाथाभिरुवाच वचनम।

सुप्रतिष्ठित मृदुपादो न गते भुवि चिह्नदर्शनम्।
सहस्रार (चक्र) लक्षणालकृत उज्ज्वलवर्णं न किंचित् अपरिपूर्णम् ॥ ८३ ॥
न्यग्रोधवृक्ष इव दीर्घायतमसमम।
तथागतोऽभूतो भवति गोपनीय वस्ति अवगुह्यम ॥ ८४ ॥
मणि सुवर्णभूषितकाय सर्वलक्षणै परस्परमुक्त।
स्वेदमलगतोऽप्येव न (नानु) मलिन ॥ ८५ ॥
दिव्यवर्णोर्जितमृदु स्निग्धच्छत्रेण प्रकृत्याच्छादित।
अप्सरो रक्तसुवर्णकाय, पुष्करिण्या प्रथमनिष्क्रान्त पुष्पमिव ॥ ८६ ॥

राजा तान लक्षणाचार्यान पप्रच्छ। लक्षणाचार्या सर्वे एव ऊचु, प्रभापरि पूर्ण काय ... धारय बोधिसत्त्वस्य लक्षण प्रशशसु —

. . .

पादतले दृश्यते चक्रलक्षण, तत्स्वरो यथा करवी कूजनम् ।
जान्वाकृति' लक्षण संयुता पूर्वकर्मभिर्निर्मिता ॥ ८९ ॥
हस्तःपरिमडलपूर्ण सुंदर' भ्रूमु नेत्रे समुचिते विशाले ।
पुरुषसिंह उत्तमवलानुभावोऽप्रतमः ॥ ९० ॥
तस्य हनुः रथचतुरस्त्र सुंदर सिंहस्येवकल्पते शम्याम् ।
चत्वारिंशद् दंता चतुरस्त्राः समुचिता ससक्ता मध्येऽतन्तरालाः ॥ ९१ ॥
ब्रह्मस्वरोऽनन्यसंगतः प्रत्ययानुगा दूरान्तिकात् आयान्ति ।
समस्थितो न वक्रकाय', हस्ताभ्या परिमृषति जानुम् ॥ ९२ ॥
हस्तःसम-समुचितो मृदु सुलक्षण पूर्णम्य नरोत्तमस्य ।
एकैकच्छिद्रं एक लोमजात, हस्तपादौ जम्ललक्षणौ ॥ ९३ ॥
मासजूट', अभिनीलनेत्र, ऊर्ध्वमधउभयतो नेत्रेंऽजनम् ।
उभौ स्कंधौ समवर्तपूर्णौ, द्वात्रिंशत् लक्षणानि पूर्णानि ॥ ९४ ॥
पादपार्ष्णि नोच्चनीचा, एणीजंघः सुंदरः ऋजु. ।
देवदेव आगत इह गजइव छिन्नरज्जुवंधनः ॥ ९५ ॥
दुःखात् विमोक्तु 'सत्त्वान् जाति-जरा व्याधिमरणस्थानात् ।
तेन करुणा चित्तोनातो वक्ष्यति सत्त्य चतुष्टमम् ॥ ९६ ॥
दिशन् धर्मपदस्यार्थं सत्त्वाना सेवा करोत्यनुत्तमम् " ।

बुद्ध उवाच—भिक्षव ! विपश्यिवोधिसत्त्वस्य उपपत्तिकाले शीतोष्ण-वात वर्षात आरक्षार्थं एव हस्ते श्वेतच्छत्र गृहीत्त्वा देवा आकाशोपरि स्थिता " ।

बुद्धस्तदा गाथयोवाच—

"नरेष्वभूतो भवतीह जातो द्विपदानामुत्तम ॥ ९७ ॥
सर्वे देवा गौरवचित्तयुक्ता उपस्थानं उपास्थु रत्नच्छत्रव्यजनै " ।

तस्मिन् काले पिता राजाऽज्ञात् चतस्रो धात्रीः— प्रथमा क्षीरपायिका, द्वितीया स्नापिका, तृतीया गधलेपिका, चतुर्थी क्रीडापिका । सुखेन सह पोषयंति अप्रमादम् ।

तदा गाथयोवाच—

"क्षीरपायिका करुणा स्नेहसान्विता जातं पुत्रं अथ पोषयन्ति ॥ ९८ ॥
एका क्षीरं पाययति स्नपयत्येका, द्वे गधविलेपिका क्रीडायिके ।

लोके (चा) ऽनुत्तमो गंध (तेन) लिंपति नरोत्तमम् " ॥ ९९ ॥

(यदा) दहरोऽभूत देशजना विलोकयति (त)

अतृप्तभावेन । तदा गाथयोवाच—

वहुजनै मानितो लालित प्रत्यग्रकृत स्वर्णप्रतिमा यथा ।
पुरुषा स्त्रिय सर्वेऽतृप्तदृशा एन विलोकयन्ति ॥१००॥

बाल्यकाले देशजना सर्वे एकत समादाय महार्घं पुष्प इव विलोकयन्ति । तथा गाथयोवाच—

"द्विपदोत्तमस्य जातकाले वहुजनाना मानितो मनाय ।
आदाय सर्वे वारेण धारयन्ति विलोकयन्ति महार्घसुगधपुष्पमिव ॥१०१॥

बोधिसत्त्वो जन्मकाल स्वनेत्र त्रयस्त्रिंशै देवैरिव स्वनेत्र न निमिषति । यस्मात् विगत-निमेष पश्यति, तस्मात् विपश्यी इति नाम प्राप ।

तदा गाथयोवाच—

"देवाना देवो न निमिषति देवा त्रायस्त्रिंशा यथा ।
पश्यन् रूप सम्यक् विपश्यति तस्मात् विपश्यी नाम (उच्यते) ॥ १०२ ॥

बोधिसत्त्वस्य जन्मकाले तस्य स्वर शुद्ध मृदु, गभीर, यथा कलविंक पक्षिस्वर, तदा गाथयोवाच—

हिमगिरिपक्षी यथा निपीय पुष्परस च गायति ।
तस्य द्विपदोत्तमस्याऽपि स्वर (तथा) स्पष्ट " ॥ १०३ ॥

बोधिसत्त्वस्य जन्मकाले (तस्य) दूर विलोकनेऽलं नेत्र एक योजन पश्यति । तदा गाथयोवाच—

शुद्धकर्मविपाकेन प्राप्य दिव्योज्ज्वल उत्तमम् ।
बोधिसत्त्वो (हि) नेत्रेण परिपश्यन्त्येकयोजनम् ॥ १०४ ॥

बोधिसत्त्वस्योत्पत्तिकालात् आयु शनैर्वर्धते, महाधर्मशालाया करोति मार्गे शिक्षा जनानुकम्पक गुणशीलितो दृष्टवन्ता। तदा (बुद्ध) गाथा- निरभाषत-

शिशुभावेऽवसत प्रणीतशालायां अकरोत् मार्गं प्रभवन् स लोकम् ।
पश्यति सर्वान् व्यवहारान् ततो विपश्यी नाम (ऽसौ) ॥ १०५ ॥
विपुल विशाल विशुद्ध प्रज्ञोऽतिगंभीरो यथा समुद्रः ।
हृष्टस्तत्र स कुर्वन् प्रज्ञाविवृद्धिम् ॥ १०६ ॥

तस्मिन् काले बोधिसत्त्व ऐच्छद् बहिर्गन्तु दर्शनार्थाय, अत्रोचत् (च) सारथिः "योजय अश्वं रत्नमये रथे, गच्छामोऽथ चङ्क्रमन्त उद्यानं द्रष्टुम्" भृत्योऽथ त्वरितं उपयोजनं समाप्य प्रत्यावर्त्य अवोचत् "इदानीं यस्य) सम्यक् कालोऽस्ति।" कुमारः तदा रत्न रथं आरूढः तदुद्यानगेहं गच्छन् अन्तरा मार्गेऽपश्यत् एकं जीर्णं पुरुषं गलितवसितदन्तं, वलितमुखं, वक्रकायं दण्डपरायणं दुर्बलं प्रवेपमानं (पथि) गच्छन्तम् (दृष्ट्वा च) कुमारोऽपृच्छद् भृत्यः "कोयं अस्ति पुरुषः?"

स प्रत्युवाच "अयमस्ति जीर्णः मनुष्य ।
पुनः अपृच्छत्-किमिति जरा अस्ति?

प्रत्युवाच-"जीर्णं आयुः जातं निःशेषं आयुः, (अनेन) न बहु जीवितव्यं, तस्मादुच्यत एष जीर्णः।"

पुनरपि कुमारोऽपृच्छत्-"अहमपि भविष्यामि एतस्माद् दुःखादवतीत?
प्रत्युवाच—"आम, जातस्य भवति ध्रुव जरा, न (तां) विना हीना वा प्रणीता ।"

तदा दुःखी दुर्मना कुमार त्वरितमुवाच भृत्यं-"नीयाहि पश्चाद् रथ (मत्) प्रासादम्।"

(अथ कुमारः) तूष्णीं प्रध्यायमानोऽचिन्तयत् 'इद जरादुःख प्राप्स्यते माम्।"
बुद्धस्तदा गाथाभिरध्यभाषत:--
दृष्ट्वा जरा जीवितं समापयिष्यति (इति) दुर्बलस्य दण्डेन गच्छतः ॥
बोधिसत्त्वोऽचिंतयदात्मनि "अह नातीत इमामापदम्" ॥ १०७ ॥

तस्मिन् काले पित्रा राज्ञा पुनरलंकृते प्रासादे सुन्दर्यः कुमार्यः (प्रेषिताः त) प्रसादयितुम। बोधिसत्त्वस्तदा गाथाभिरध्यभाषत -

वर्धयामास पच कामगुणान्, इच्छा न कुर्या निष्क्रमणस्य गेहात्" ।। १०८ ।।
पुनश्च पश्चात् कुमार आज्ञापयामास सारथिं—

"योजयरथ निष्क्रमिष्यामि विहाराय ।"

अथ तस्य मार्गे समगच्छद एको व्याधित पुरुष कायेन शिथिल महोदर कृष्णमुख (स्व-) मूत्रकरीपे शयान । न पुरुषा प्रेक्षते त, (स हि) अतिग्लान मुखतो भापितु न समर्थ । (दृष्ट्वा च त कुमार) पप्रच्छ सारथिं— "कोऽयमस्ति पुरुष ?"

प्रत्युवाच-- "अयमस्ति व्याधित पुरुष ।"
"वद किमिति व्याधित ?"

प्रत्युवाच-- "व्याधित (स) य पीडित दुःखित ।" मरिष्यति न चिरेण, तस्मादुच्यतेऽसौ व्याधित इति ।"

पुनरुवाच-- "कच्चिदहं अपि न अस्मात् दुःखादतीत ?"

प्रत्युवाच— "आम, जातस्य भवति व्याधि, न ता विना हीना वा प्रणीता ।"

तत कुमार उवाच दुर्मना —"एव वदसि चेत् सारथि नीयाहि पश्चाद् रथ प्रासादे तूर्णीम् ।"

(अथ) ध्यायमानोऽचिंतयत्। अय व्याधिनो दुःखी, अहमपि भविष्यामि (तथा)। बोधिसत्त्व [illegible] तदा गाथयाऽभाषत –

अपश्यत न चिर व्याधित नर वर्ण तस्य पीत [illegible] ।
[illegible] [illegible] 'अह च नातीत [illegible] ॥ १०९ ॥

पिता राजा तदा पुनरपृच्छत् सारथिं– कच्चित् विहाराय निष्क्रान्त कुमारो न रमते ? पुनश्चापृच्छत् तस्य कारणम् ।

स चोवाच-" (यान-) ारुढ समगच्छत् व्याधित नरं, तस्मात् न आत्तमन· (तुष्ट·) ।

अथ पिता राजाऽऽत्मनि तूष्णीं अचिन्तयत् । एकदा लक्षणचिंतका व्याचक्रु निष्क्रमिष्यति (कुमार) गेहात् । अथ न सुमना, किमेतद् एवं भविष्यति । पुनरपि करोमि उपायम् । वर्धयामि कन्या, यथा तासा गीतेन प्रसन्न चित्तोऽसौ न निष्क्रमेद गृहात् । अथ पुनरपि अलंकृते प्रासादभवने त प्रसादितु सु दूर्य कुमार्यो नियुक्ता । [१]तदावोधिसत्त्वो गाथयोवाच –

रूप-शब्द-गध-रस-स्प्रष्टव्यान् प्रणीतान् उत्तमान् प्रासादिकान् ।
उपभु क्ते वोधिसत्त्व तथा पूर्वे कृतपुण्यो यस्मात् ॥ ११० ॥

अथ पुनरपि अन्यस्मिन् काले कुमार आज्ञापयत् सारथिं—

"योजय रथ, निर्गमिष्यामि विहाराय ।"

अथास्य मार्गे समापतत एको मृत पुरुष नानावर्णाभि पताकाभि – पुरत पश्चाच्च नीयमान । सवधिन ज्ञातय ग्रामवासिनश्च अतिकरुण क्रंदत परिदेवयन्त नयन्तित वहिर्नगरात् ।

कुमार पुनरपृच्छत्— "कोयमस्ति पुरुष ?"
प्रत्युवाच—"अयमस्ति मृत पुरुष ।"
अपृच्छत्—"कोऽस्ति मृतो नाम ?"

प्रत्युवाच—"मृतोऽसौ निरुद्धो लोके । वात प्रथम, अग्नि पश्चात्, सर्वाणि इन्द्रियाणि त्यजति मृत, अन्यदा कुलात् निर्गमयन्ति । तस्मादुच्यतेऽसौ मृत इति ।"

पुनरपि कुमार पप्रच्छ सारथि—"अह अपि (एव) भविष्यामि, कच्चिद् अनतीतोऽह इमा आपदम् ।"

प्रत्युवाच—"आम, जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु न (त विना · भवति हीन प्रणीतो (वा) ।"

तत कुमारः अनात्तमना असुमना उवाच सारथिं—
"नीया हि रथ पश्चात् प्रासाद ।"

---

१ "बुद्ध" इति भाषान्तरे

शात तूष्णीभूतो ऽचिन्तयत् चिन्तयन् स 'अय मृत्युदु ख, अहमपि भवि-ष्यामि (एव) । ' तस्मिन् काले बुद्धोऽप्यभाषत गाथया

प्रथम अपश्यत् नर म्रियमाण, अज्ञासिपत् स पुनर्जायत इति'

तूष्णीं शातोऽचिन्तयत् आत्मनि अहं (अपि) अनतीत इमा आपदमिति ॥ तदा पुनरपृच्छत् पिता राजा सारथिं "कच्चित् न कुमार आप्तमना वहिर्गत ?"

प्रत्युवाच—"नाप्तमना " ।

पुनरपृच्छत् तस्य कारणम्, (स) प्रत्युवाच

—"मार्गे समागात् मृत पुरुष , तस्मान्नाप्तमना ।"

अथ पिता राजा तूष्णीं आत्मनि अचिंतयन एकदा लक्षणाचार्या व्याचक्रु लक्षण कुमारस्य निष्क्रमिष्यति गृहात् । अद्य न सुमना , अह पुनरपि विधास्ये-ऽस्योपायम् । वर्धयाचकार ना कन्या प्रसादयन्तु तस्य चित्तमिति, यथा न निष्क्रमेत् गेहात् ।

अथ पुनरपि अलकारयामास प्रासादभवन, नियोजयामास कन्या त प्रासादयितुम्' बुद्धस्तत्र गाथयोवाच

कौमार्ये भवति सुन्दरीभि कुमारिभि परिवारित ।
पचभोगान भुञ्जमान शक्रो यथा देवेन्द्रोऽसौ ॥ ११७ ॥

अथ अन्येद्यु पुनरालापयन सारथि (कुमार)
—'योजय रथ बहिर्गमनाय ।"

अन्तरामार्गे समागमन अपश्यन चार्गो एक श्रमण परिधाय चीवर

अथ मार्ग सत्य, यस्मात् कुमार प्राव्रजत् पर्यवर्जयत् च राज्य सम्मानपद विशेषत ।"

अथ चतुराशीति सहस्र मनुष्याणा देशस्य गत्वा कुमारस्यान्तिक अयाच्चन्त श्रावका भवितु अगारात् प्रव्रजितु, अनुयोक्तु मार्गे । तदा बुद्धो गाथयाऽभाषत

प्रतिनिवृत्तोऽभ्युपागमत् गभीर धर्ममुत्तमम्

तेश्रुत्वाऽनुजग्मु प्रव्रजितु दूर हि रागम्नेहयवनागारात् रहिता सर्वबधनै ॥ ११३ ॥

अथ कुमारस्तदा यथाविध अन्वजानत । तै सार्धं चरति सर्वत्र ग्रामाद् ग्राम जनपदाद् जनपद सर्वत्र (धर्म) देशयन् । स प्राप्य तत् स्थान न किमपि गौरव (अभिकांक्षितेस्त), मनुष्याश्च, प्रत्यय चतुष्टयेन उपतिष्ठति । बोधिसत्त्वोऽचिन्तयत् 'अह हि परिषदा विहरन् सर्वत्र जनपदे मनुष्यैराकीर्ण, इद न मे प्रतिरुप यन्नु अह विहाय इमा परिषद, प्रविविक्ते स्थाने विहरामि, तत्र मार्गं पूरयिष्यामि वाञ्छितम ।' अथ प्रविविक्ते स्थान एकाकी अन्वयु जत मार्गे, अकरोत् च चिन्ता "(कृच्छ्र बत रे) सत्त्वा अनुकम्पनीया, सदा तम परायणा लब्धा काय सातक भगुर, जायते जीर्यन्ते व्याधिमन्त श्च्यवन्ते, सर्वं दु ख उपपद्यन्ते च्युता इतो जायते तत्र, ततो जायतेऽत्र । एतत्प्रत्ययात् अय दु खस्कन्ध । (एतस्मिन्) ससरमाण सधावमान अनत (कालम्) कदाह मानान्करिष्यामि दु खस्कन्ध, निरुध्येत (मे) जाति-जरा-मरणम । अथ तस्य मनसि अभवत जातिमरण कुत किंप्रत्यय चभवति ? तत प्रज्ञाय अपश्यत् कुत -जातितो भवति जरामरण, जातिरस्ति जराम-

तस्मिन् काले (भगवान्) बुद्धो गाथाभिरध्यभाषत

इदं वचो वोच (द) गणे, शृणुत यूय कुशला ।
अतीतेऽपश्यन् बोधिसत्त्वः पूर्वाश्रुत धर्मम् ॥ ११४ ॥
कस्य प्रत्ययाद जरामरण, कस्य हेतोश्च भवति ।
एवं सम्यग् दृष्ट्वा जानीथ तस्यसमुदयो जातित ॥ ११५ ॥
कस्य प्रत्ययाद् जातिसमुदयः कस्य हेतोश्च भवतीद वस्तु ।
एव मनसि कृत्वा जानीथ, भवाद् जाति समुदय ॥ ११६ ॥
तत्त् उपादान उपादाय पर्यायेण पुन वर्धते ।
तस्मात् तथागता अवदन् 'उपादान अस्ति भवस्य हेतुप्रत्यय ॥ ११७ ॥
गभीरमलाकुशलनिकायो वातो वहति यथा न परिशुद्ध ।
एव उपादानलक्षण-हेतुरेपा जायते तृष्णा ॥ ११८ ॥
ततो वेदना जायते, उपपद्यते दु खसमुदयो यत ।
रागस्य हेतु प्रत्ययाद, सुखदु ख अन्योन्य सगतम् ॥ ११९ ॥
वेदनासमुदय कस्य प्रत्यया हेतु कश्च भवति वेदनाया ।
एव चिंतयित्वाऽज्ञासीद वेदना जायते स्पर्शत ॥ १२० ॥
स्पर्श समुदय कस्य प्रत्ययाद, हेतु कश्च भवति स्पर्शस्य ।
एव चिंतयित्वाऽज्ञासीत् स्पर्श जायते षडायतनत ॥ १२१ ॥
षडायतनसमुदय कस्य प्रत्ययाद, हेतु कश्च भवति षडायतनस्य ।
एव चिंतयित्वाऽज्ञासीत् षडायतन जायते नामरूपत ॥ १२२ ॥
नामरूपसमुदय कस्य प्रत्ययात्, हेतु कश्च भवति नामरूपस्य ।
एव० नामरूप जायते विज्ञानत ॥ १२३ ॥
विज्ञानसमुदय कस्य प्रत्ययात्०
एव० विज्ञान जायते संस्कारत ॥ १२४ ॥
संस्कार समुदय०

तस्माद अनित्यं दुःखं पंडितैरुपच्छेदनात् ॥ १२७ ॥
स चेद अविद्या निरुध्यति तदा न भवति संस्कारः ।
सचे द न भवति संस्कार, न भवति विज्ञानं तदा ॥ १२८ ॥
विज्ञानस्य नित्यरोध चेत्, न भवति नामरूपकम् ॥
नामरूपं निरुद्धंचेत्, न भवति सर्वमायतनम् ॥ १२९ ॥
आयतनाना नित्यरोधे न भवति स्पर्श तदाः ।
स्पर्शस्य नित्यनिरोधे तु न भवति वेदना तदा ॥ १३० ॥
वेदना ।नत्यरोधे तु, न भवति तृष्णा तदा ।
तृष्णा नित्यरोधे तु, न भवति उपादानं तदा ॥ १३१ ॥
उपादान नित्यरोधे तु, न भवति भवस्तदा ।
भव नित्यनिरोधे तु न भवति जातिस्तदा ॥ १३२ ॥
जातेर्नित्यनिरोधे तु, न जरा-व्याधि-दुःखकम् ।
सर्वेषां सर्वथा क्षये, पडितस्तेन उच्यते ॥ १३३ ॥
द्वादश प्रत्यया अतिगभीरा दुर्दशा (च) विज्ञातुम ।
बुद्धा एवालंसंबोद्धुं हेतुरस्ति नास्ति वा ॥ १३४ ॥
आत्मना ज्ञायमाने तु नायतनानि भवंति (हि) ।
गंभीरं हेतुप्रत्ययं दृष्टा नरो न पर स्पृहयत्याचार्यम् ॥ १३५ ॥
शक्त स्कन्ध-धात्वायतने वहिः कामी न रागवान् ।
लाभी सर्वदानाना परिशुद्धं प्रतिफल दायकस्य ॥ १३६ ॥
लब्ध चेत् चतुर्भाणकं लभते तत्र ध्रुव प्रतिवेदनम् ।
शक्तः बंधनग्रंथीनां स्कधाना छेत्तुं अप्रमादत ॥ १३७ ॥
रुप-वेदना-सज्ञा-सस्कार-विज्ञानानि जीर्णपुराण रथो यथा ।
सत्यं इमधर्मं पश्यति चेत् तदा भवति सम्यक् सबुद्धः ॥ १३८ ॥
शकुनो यथा उड्डयते नभे शक्नोति पूर्वं अपर चानुवातम् ।
छित्वा पाशान् बोधिसत्त्वोऽगुरुवस्त्रमिष डयते वातम् ॥ १३९ ॥
विपश्यी तत्रोपशान्तः अभिसमबुध्यत तत्र सर्वधर्मान् ।
जरामरणं किंप्रत्ययो भवति, तत् केन निरुध्यति ॥ १४० ॥
स इदं साक्षतत् कृत्य जात शुद्धनिर्मलप्रज्ञः ।
अज्ञासीत् जरामरणं जातेः, जरामरण निरोधो जाति निरोधतः ॥ १४१ ॥

विपश्यी बुद्धः प्रथमाभिसबुद्ध तस्मिन् काले प्रायेण द्वाभ्या विहाराभ्या वेहरति । मैत्री (:) विहारेण उपेक्षाविहारेण वा, बुद्धस्तदा गाथाभिरध्यभाषत—

तथागतोऽसमसम प्रायेणान्वयु जत द्वियोर्विहारयो ।
मैत्र्याचोपेक्षयाच ऋषिमु क्त पारगत ॥ १४२ ॥
तस्य चित्तमलभत स्वस्य भाव छित्वा सर्वपाशान् ।
आरुह्य शैल पश्यति चतुर्दिश, तस्माद् विपश्यी समुच्यते ॥ १४३ ॥
महाज्ञानालोकेन तमो विनाश्य यथा स्वच्छया आदर्शे ।
लोकस्यानाशयत् मोहान्तराय क्षीण जातिजरामरणदु खम् ॥ १४४ ॥

विपश्यी बुद्ध प्रविविक्ते स्थाने पुनरिद अचिन्तयत 'प्राप्तो मयाऽतिगभीरोऽद्भुतो दुर्ज्ञेयो दुर्दर्शोऽनुत्तरो धर्म प्रहाण निरोध अन्तरायोपशामक पडितैर्वेदनीय न पृथग्जनै लभ्य । यत सत्त्वा नानाविमुक्तिका नानादृष्टिका नानाग्राहिणो नानाशिक्षा ततस्ते नानादृष्टिका । प्रत्येक ते सुखविपयसमन्वागता प्रत्येक ते चर्याचित्ता , तस्मात् ते न ज्ञातु शक्नोति इम अतिगभीर हेतुप्रत्यय, भूयो दुर्ज्ञेय तृष्णा क्षय निर्वाणम् । अह चेत् तेपा देशेय, ते नून न ज्ञास्यति, भविष्यति च मे केवल क्लमथो विहिसा ।' एव चिन्तयित्वा तृष्णीभूतो न उवाद धर्मम् । अथ ब्रह्मा देवराजोऽज्ञासीत् विपश्यितथागतस्य चित्त अचिन्तयत्—

'नश्यति वत रे, अयलोक , विनश्यति वत रे शीघ्र अय लोक । विपश्यी बुद्धो लब्ध्वा गभीर अणु एत धर्म न चेच्छति देशितुम् । (अथ) स यथा बलवान् पुरुष बाहुद्वय सकोचयेत , एव ब्रह्मा स्वब्रह्मलोके तत्र क्षण आगम्यावातिष्ठद् बुद्धस्य समक्ष, शिरसा पादौ वन्दित्वाऽतिष्ठत एक मन्तम । अथ ब्रह्मा देवराजो दक्षिण जानु पृथिव्या स्थापयित्वाऽञ्जलि कृत्वाऽवोचद् बुद्धम्—

'देशयतु भगवान् देशयतु सुगतो धर्मदेशनाम् । सन्ति इदानीं इमे सत्त्वा अल्परजस्का नात्युत्कण्ठिता सर्वस्वचित्ता [illegible] आज्ञातारो भविष्यन्ति [illegible] अनुकरोति [illegible] निरोध , अनुत्तर धर्म, अभिनीय कुशलान् मार्गान् ।"

सूको देशयितुं धर्मम्, अहमित असंख्येय कल्प पूर्वंगत आतापी प्रहितात्माऽप्रमत्तो व्यहरं अनुत्तर (ब्रह्म-) चर्यं, अजाप्यगच्छं दुर्लभमेत धर्मम् । स चेद् वदेय क्रोधनं अन्य सत्व, तभून अनुद्गृहीत भवेत् । (तच्च) भवेत मे क्लमथो विहिंसा । अयं धर्मोऽगुरुद्भुत., लोकतो विप्रतीय । सत्वा कामरता अज्ञा अवाटा, नालं ज्ञातु देशनां (मे) । ब्रह्मराज ! एव पश्यामि अहमत्र सेन तूष्णी, नेच्छामि धर्मं देशितु (इमम्) । "

अथ ब्रह्मा देवराजा पुनर्यमाचे हृदयात् प्रार्थयन् सकरुण यावत् तृतीय- "सचेद् भगवान् न दिशति धर्मं, नश्यति वतरे ! अय लोक , कृच्छ्रं वत रे नेच्छति भगवान् अकाले देशयितुम् । अथ सत्वाऽधोगमिष्यति अपरांगतिम् । "

तदा भगवान श्रत्वाऽभिप्रार्थयमानस्य ब्रह्मराजस्य त्रि याचना, अथ बुद्धच- क्षुणाऽपश्यत् लोके-सत्वा समन्वागताः क्लेशेन स्थूलेन अणुना, तीक्ष्णमदेन्द्रिया सुखेनदु खेन वा विनेया । सुखविनेया ये विभ्यति परलोकाद् । तस्मादल निरोधयितु अकुशलधर्मं उत्पन्न कुशलगतिका । यथा (पुन) उत्पलिन्य पद्मिन्यो वा कुमु- दिन्य पुण्डरीकिण्ये (वा सरसि) भवति मलिने पके जायमानाः । (तत्रैकत्या) न यावद् जल, अन्या तिष्ठति अत्युद्गम्य जलालेन सार्द्र[1] , अन्या वा भवति बहिर्ज- लाद् । नोत्फुल्ला अपि सर्वा जलेन अनुपलिप्ता, सुखेन विकासनीया , सत्वा अपि लोक एवम् । "

अथवा भगवान् उवाचब्रह्मराज—"अनुकपा उपादयते देशयिष्यामि इदानीं अमृतधर्मद्वार, धर्ममित्र गभीरं अद्भुत दुर्विज्ञेयम । इदानीं ये श्राद्धा , प्रसन्ना , तेपा देशयामि, न तु विवदमानना उपद्रुतानाम् । अनुपकारक तेभ्यो देशनम् । "

अथ ब्रह्मराजो बुद्धेनोपगृहीता प्रार्थनाम इति संतुष्ट उत्थाय प्रदक्षिणा कृत्या बुद्धस्य पादौ त्रिवार शिरसा वन्दित्वा तत्क्षण अन्तरधात् । अचिर प्रक्रान्ते तस्मिन् अथ तथागत' तूष्णी आत्मन्य चिन्तयन्'-कं प्रथम देशयं धर्मम्' । अथा- चिन्तयदात्मनि 'प्रतिपसतश्च बधुमती नगरे कुमारो यश ' महामात्यपुत्र तिस्यश्च । ताभ्यां विवृणुया अमृतधर्मद्वारम ।'

---

१ सद इति पाठ्याम्

अथ भगवान यथा वलवान पुरुष समिजेत विर्भिजेतवा (प्रसारित) वाहु , तथा हि तत्वेण मार्ग वृचे [1] अन्तर्धाय यत्र वधुमती नगरे वधु (मठो) राज्ञो मृग-दाववने प्रज्ञप्त आसने न्यषीदत्। अथ वद्धो गायथाऽ भाषत—

सिंहो यथा स्मच्छन्द परिक्रमते वने ।
एव बुद्धोऽपि परिक्रमतेऽव्याइतगाति ॥ १४५ ॥

(अथ) विपश्यी बुद्ध आमत्रते स्त्र उद्यानपाल— "प्रविश्य नगर वद राजपुत्र यशास (खड) महामात्य पुत्र तिष्य[2] च कच्चित् न जानाति (भवान) निपश्यी बुद्ध इदानीं वसति मृगदाववने, इच्छेयु यूय द्रष्टुम्। (यस्य इदानीं) कालो मन्यते (स्वामी) ।

अथ उद्यानपाल आदेश लब्ध्वा यत्र तयोद्वयो पुरुषयो स्थान तत्राऽगमत् , अवोचच्च वुद्धस्यादेशम। तन्छ्रु त्वा उभौ उपमक्तातौ बुद्धस्य स्थानम। (उपसक्र म्य च) शिरसा वदित्वा (बुद्धस्य) पादौ एकमत्त न्यषीदताम। तयोर्बु द्धोऽऽनुपूर्व्येण धर्मं प्रकाशयामास सुखेन उद्भाहयित , तद यथा दानकथा, शीलकथा स्वर्गोपत्तिकथा, कामाना अवकार, सक्लेशस्य ऊर्ध्वास्रव भूम्यत्तरायस्य प्रज्ञाण विनिर्गम अत्यणसु तर परिशुद्ध प्रथमम। यदा भगवान् अपश्यत् तयोरुभयो चित्तावेत्त मृद् उदग्र प्रसन्न हृष्ट सद्धर्मग्रहण समर्थ, अथ ताभ्या देशयामास दु ख आर्यसत्य व्याचकार घोषयाचकार, दु ख समुदयार्यसत्य, दु खनिरो धार्यसत्य, दु खनिरोधगामिनीं प्रतिपद आर्यसत्यच। अथ राजपुत्रस्य यशस तिष्यस्य[3] च महामात्यपुत्रस्य तस्मिन्नेवासने वीतमल विरज परिशुद्ध धर्मचक्षुरुदपादि, तद्यथा शुद्ध वस्त्र सुखेन गृह्णीयाद वर्णम ।

भगवा (तस्मिन्) समये गाथाभिद्ध्यभाषत—

तुष्टचित्त समुत्थाय प्राशंसत तथागतम् ।
विपश्यी भूत्वा बुद्धोऽनुत्तर धर्मचक्रं प्रावर्त्तयत् ॥ १४६ ॥
तोतिराज उपपन्न (?) उपाक्रमत् वंधुपुरीम् ।
यशस्तिष्ययो कृते प्रावर्त्तयत चतु.सत्त्यधर्म चक्रम् ॥ १४७ ॥
अथ लब्ध्वा यशस्तिष्यौ बुद्धस्य देशनाम् ।
परिशुद्धं धर्मचक्रं ब्रह्मचर्यमनुत्तरम् ॥ १४८ ॥
अथ देवा त्रायस्त्रिंश शक्रश्च देवानामिंद्र ।
हृष्टतुष्टा मिथ ऊचु सर्वैर्देवैरश्रु तम् ॥ १४९ ॥
बुद्ध जातो लोके प्रावर्तयद् धर्मचक्रमनुत्तरम् ।
वृद्धि र्देवानां सर्वेषा असुराणा च परिहाणिः ॥ १५० ॥
उत्थाय विश्वश्रावा नाम ऋषिः दु खेज्ञानं लोकतो विराग. ।
सर्वेषु धर्मेष्वात्मस्थित प्रावर्त्तयत्प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५१ ॥
अभावयत् समसमै. धर्मै. अवशिष्ठै चित्तं निर्मलम् ।
परिज्ञातु जाति-मरणान्तरायं प्रावर्त्तयत प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५२ ॥
निरोधाय दु खस्य विरागाय च सर्वदोषाणा
निष्कामो लभत आत्मस्थितिम् ।
राग-लोभ-सौमनस्य वर्जित प्रावर्त्तयत् प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५३ ॥
श्रेष्ठो नराणा सबुद्धो द्विपदामुत्तयो वशी ।
सर्ववन्धिनिर्मुक्त प्रावर्त्तयत् प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५४ ॥
देशयन् कुशल नानाऽऽचार्यक मारशत्रोर्विजेता ।
विगत सर्वैरकुशलै प्रावर्त्तयत् प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५५ ॥
निरास्रवो मारजितो सर्वेन्द्रिये ष्वपरिश्रान्त ।
क्षीणास्रवो विगतमारपाश प्रावर्त्तयत् प्रज्ञया धर्मचक्रम् ॥ १५६ ॥
सचेत् शिक्षेत निश्चिनुयान सर्वान् धर्मान् अनात्मत ।
अयमस्ति धर्मे पूत्तार. प्रावर्त्तयत्० ॥ १५७ ॥
नेच्छति यत आजीवलाभ अपि न याचते यश ।
सत्त्वेषु तेषु करुणायमान प्रावर्त्तयत्० ॥ १५८ ॥

दृष्ट्वा सत्त्वान् दुखान्तरायमग्नान् जराव्याधि-मृत्युभि पीडितान् ।
एताभि तिसृभि दुर्गतिभि प्रावर्त्तयत्० ॥ १५९ ॥
क्षीण रागद्वेषमोह प्रहीणतृष्णा मूल ।
अचलश्च विमुक्तौ प्रावर्त्तयत्० ॥ १६० ॥
आत्मा (हि) जेतु दुर्जयोऽकरोद् जिन आत्मजयम् ।
दु ख जेतु अजयत् मार प्रावर्त्तयत्० ॥ १६१ ॥
अनुत्तर धर्मचक्रमिद बुद्ध एव तदा प्रवर्त्तयितुमलम् ।
सर्वे -देवशत्रुमार-ब्रह्मभि नाल दुष्प्रवर्त्त्यम् ॥ १६२ ॥
सबुद्ध प्रवर्त्तित धर्मचक्र हिताय देव-मनुष्याणाम् ।
एतान् देव-मनुष्यान् शास्ताऽतारयत् परपारम् ॥ १६३ ॥

तदा राजपुत्रो यशो महामात्यपुत्रो मित्-च चापश्यता धर्मं, अलभता फल अमृपाभूत परिपूर्ण अभयम् । अथ तौ ऊचतु बुद्ध एतद वचन— "इच्छाव तथागतस्य सुपरिशुद्धे धर्मविनये ब्रह्मचर्यं चरितम ।"

बुद्ध उवाच— "साधु, एता भिक्षू , मम धर्मे परिशुद्धे आत्मनि स्थितौ चरता (ब्रह्मचर्यं) सम्यग्दु खक्षयाय ।"

तस्मिन काले द्वौ जनौ अलभता उपसपदम् । उपसम्पाद्य तथागतो नचिरेण प्रातुरकरणेन निर्माय त्रीणि वस्तूनि, तद्यथा प्रथम ऋद्धिपाद इति, द्वितीय परचित्त-ज्ञान इति, तृतीय च शिक्षा-शील इति । तदा अलभता अनास्रवा चेतोविमुक्ति अविचिछिन्न प्रसन्नाम् ।

त [illegible] मिन काल व [illegible] मती नगरेऽ [illegible] न महाजन —

'द्वौ जनौ प्रव्रज्य अगारात् शिक्षेते (बोधि-) मार्ग आश्रित्य चीवर परिशुद्ध पान च भाव [illegible] ब्रह्मचर्यम । (अथ [illegible] सर्वे परस्पर ऊचु - अहो [illegible] मार्ग [illegible] चरतु [illegible] लोक [illegible] ।"

सूक्ष्मं प्रणीतं परिशुद्धं अनुत्तरं भावम्। यदा भगवान् अपश्यत् तं महाजनं मृदुचित्तं श्राद्धं प्रसन्न हृष्टतुष्ट भव्यं सद्धर्मलाभाय, अथ तं अदेशयत् दुःखं आर्यं सत्यं संवद्मान. सविभजमान, प्रकाशयत्, व्याकरोच्च दुःख समुदयं आर्यसत्यं, दुःखनिरोधं आर्यसत्य, दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदं आर्यसत्यम्। अथ तत् चतुराशीतिजनसहस्र तस्मिन्नेवासनेऽलभत परिशुद्धं धर्मचक्षुः, तद्यथाऽवदातं वस्त्रं सम्यग् गृह्णीयाद वर्णम्। अपश्यत अलभत च फल पूर्णं अभय अमृषाद्वारेण।

अथ ते ऽवदन् बुद्ध च इद वचन—
"इच्छामो वय तथागतस्य सुपरिशुद्धे धर्मविनये ब्रह्मचर्यं चरितुम्।"

बुद्ध उवाच—"साधु, एप भिक्षव मम धर्मे आत्मस्थिता चरथ (ब्रह्मचर्यं) सम्यग्दु क्षयाय।"

अथ चतुराशीतिजनसहस्र अलभत उपसपदम्। उपसपाद्य च तथागत नचिरेण पर्यपूरयत् भगवत त्रिवस्तुका शिक्षा, तत्र प्रथम उच्यते ऋद्धिपाद, द्वितीय उच्यते परचित्तज्ञानं, तृतीयमुच्यते शिक्षा शीलम। अथ ते ऽलभन्त अनास्रवा चेतोविमुक्ति अविचिकित्स प्रज्ञातां चतुराशीतिसहस्रं जना।

अथ अशृण्वन् वंधुमतीजना।— "बुद्धो (भगवान्) मृगदावे प्रावर्त्तयद अनुत्तर धर्मचक्र केनापि श्रमणेन ब्राह्मणेन देवेन मारेण ब्रह्मणा च अप्रावर्त्यम।"

तदा वधुमतीवासिन उपसचक्रमु. तत स्थानं, यत्र भगवान् स्थित, उपसक्रम्य च शिरसा वदित्वा (भगवत) पादौ एकमन्तं न्यपीदन्। तदा बुद्धो गाथयाऽभाषत—

यथा याचन्ते शरणात् प्रत्रीप्रात शीघ्र कामयन्तो विरोध स्थानम्।
एव जनास्त्रोऽपि शीघ्रं उपजग्मु त तथागतम् ॥ १६४ ॥

अपिचैव, तस्मिन् काले वंधुमत्या अभवत् त्रिशताष्ट चत्वारिंशत् सहस्र महाभिक्षुसघः। यशो भिक्षु भिन्न्वा भिक्षुश्च तस्मिन सघे उद्गम्य आकाशं कायात् निष्कासयामासतु जल अग्नि (यमकप्रातिहार्यं), अदर्शयताच ऋद्धि

तस्मिन् काले तथागत तूष्णीं स्वचित्त उवाच— अस्मिन् नगरे च भवति भिशताष्टचत्वारिंशात्स हस्र महाभिक्षुसघ, यन्तु अह प्रेयेय द्वौ द्वौ प्रत्येक स्थान षष्टे सवत्सरे च प्रत्यावर्त्तन नगरे तेषा, देशयतु च ते परिपूर्ण शीलम्।"

अज्ञासीत् च तथागतस्य चित्त सहापति ब्रह्मा (सि-तु-ब्रह्म-देवो), अथ यथा बलवान् पुरुष सम्मिञ्जित बाहु प्रसारयेत्, तथा तस्माद् देवलोकात् निष्क्रम्य उपाक्रमत् इहात्र भगवत पुर शिरसा वादेत्वा एकमन्त अतिष्ठत् एकमन्त स्थित्वा च उवाच बुद्ध—

"एवमेव भगवन्, अस्मिन् बधुमती नगरे बहुभिक्षुसघ, युक्त सर्वेषा सविभाग सर्वत्र चारिका च क, षटसु सवत्सरेषु प्रत्यावर्त्तन चास्मिन् नगरे। देशयतु परिपूर्ण ब्रह्मचर्य आरक्षिष्यामिच तत्र छिद्र न लाभ गवेषयत्।"

तदा तथागतो देवस्य वचन श्रुत्वा तूष्णीं अन्वज्ञासीत्। दृष्ट्वा तूष्णीं अनुजानन् बुद्धस्य भिक्ष- वा देवो वदित्वा बुद्धस्य पार्श्वे तत्र क्षण अन्तर्धाय ऊर्ध्व देवलोक प्रत्यावर्त्तत।

न चिरेण तस्य गमनात् बुद्धो तान भिक्षून् उवाच—

इदानीं अस्मिन नगर भिक्षुसघो बहु, परितो गच्छत चारिकार्थ, षण्णा सवत्सराणा पश्चात् आगच्छत शील (प्रातिमोक्ष) श्रोतुम्।"

तदा त भिक्षव श्रुत्वा बुद्धस्य वचन पात्र-चीवर आदाय वन्दित्वा च बुद्ध अगमन्। तस्मिन् काले बुद्धो गाथया उवाच—

"परिपूर्णानि षट् संवत्सराणि, प्रत्यावर्त्तध्व प्रातिमोक्ष उद्दष्टुम् ।"

अथ ते भिक्षव प्रतिश्रुत्य देवस्य वचन पात्रचीवर आदाय प्रत्यागमन् बधुमतीनगरे, गताश्च मृगदावे (यत्र) विहरति विपश्यी बुद्ध , शिरसा वन्दित्वा बुद्धस्य पादौ एकमन्त न्यपीदन् । तस्मिन् काले बुद्धो गाथयाऽध्यभाषत—

यथा हत्थी सुविनीत' कामनामनु गच्छति ।
एव सघ (सुविनीत) शिक्षा अनुप्रत्यावर्त्तते ॥ १६६ ॥

तस्मिन् काले तथागतो महत सघस्य पुरत ऊर्ध्वं वाते पर्यंकं आभुज्य न्यषीदत् , अदिशत् च प्रातिमोक्षसूत्र, क्षाति प्रथम अदिशद् बुद्धो निर्वाणं— न भवति केश-श्मश्रुवहारेण मुडोऽथ श्रमण ।

तस्मिन् काले सि-त-बुइ-देव उपागम्य बुद्धस्य नातिदूरे गाथाभिर भाषत स्तोमनवचन—

तथागतो महाप्रज्ञ सूक्ष्माद्भुतकेवलोत्तम ।
सम्यग्भावनापरि पूर्णोऽभवत् सम्यक् सबुद्ध ॥ १६७ ॥
सत्त्वेष्वनुकपया लोके परिपूर्णं मार्गम् ।
चतुर्णां आर्यसत्त्याना श्रावकेभ्य समदिशत ॥ १६८ ॥
दुःख दु खसमुदय च दु खनिरोध-सत्त्य (च) ।
आर्य यष्टागिक मार्ग प्राप्य स्थान सुरक्षितम् ॥ १६६ ॥
विपश्यी बुद्ध प्रादुर्भूय लोके सघमध्ये ।
सूर्यो यथा (स्व) प्रभया प्रभासते ॥ १७० ॥
इमा गाथा उक्त्वा तत्रैवान्तरधात् ।

तस्मिन् काले भगवान् उवाच तान् भिक्षून्—

"मम (एव) स्वचित्तेऽभूत्—पूर्वं एकदा राजगृहे गृध्रकूटपर्वतेऽभूवम् । तदा मम चित्त इद अभूत्—य कोऽपि मम उपस्थान अच्छति त-चु-हि-देव परिवर्ज्य, सचेद जायते देवेषु, न पुनरागमिष्यतीह । पुनरपि भिक्षव , तदा मम चित्त इद अभूत्—इच्छामि अह यावत् देवेषु उपरि गन्तुम् अथ अह यथा बलवान् पुरुष सम्मिजित बाहु प्रसरयेत् (प्रसारित वा समिंजेत् तस्मिन्नेव) काले इतो निर्गम्य प्रादुरभव तेषु देवेषु । अथ ते सर्वे देवा मा दृष्ट्वा आगता तत्र । (आगत्य) च

शिरसा वंदित्वा एकमन्त स्थिता ऊचुश्च इद वचन–'वय सर्वे श्रावका विपश्यिन तथागतस्य, तस्माद् बुद्ध देशनार्थं आगता इह। (अथ) आदिशद बुद्धो हेतु प्रत्यय साधन्त पुन (भविष्यति) शिखी बुद्ध, विश्वभू बुद्ध क्रकुसच, कोनागमनो बुद्ध, काश्यपो बुद्ध, शाक्यमुनि बुद्ध । सर्व इमे भवन्ति शास्तार । अह एतद्दशनार्थं आगत इह । अवदन च ते बुद्धा सहेतु-प्रत्यय साधन्त, जाता (च) अकनिष्ठलोके च एवम् ।

तस्मिन् काले बुद्धो गाथाभिरभापत—

पुरुषो यथा बलवान् बाहु समिंजेत प्रसारयेत् ।
अह अकरव ऋद्धिविध गन्तु अकनिष्ठ देवेषु ॥ १७१ ॥
सप्तमे महास्वर्गे जित्वा उभय मारम् ।
अपश्यन् अनन्ता देवा अवदन कृत्वाऽञ्जलिम् ॥ १७२ ॥
यथा श-तु-त्रून शक्र शास्तारमभ्युगोन् ।
सुलक्षण पुण्य सुदर्शन देवा ॥ १७३ ॥
पद्मपुष्प यथा नोलिप्यत जलेन ।
तथा भगवान् अनास्रवो गत सुदर्शने ॥ १७४ ॥
सूर्यो यथा प्रथम उद्गत परिशुद्धोऽनाविल ।
प्रभाय था शरदिन्दो प्राप्त परममनुत्तम एकम् ॥ १७५ ॥
इमेषु पचस्थावसथेषु सर्वे जायन्ते शुद्धमांग ।
शुद्धचित्ता तत आगत्य न क्लेश प्राप्त वन्ति ते ॥ १७६ ॥
परिशुद्धचित्तमागत्य मत्वा बुद्धस्य शासना ।

ककुसंघस्य पुत्र. (स) सर्वान् परिहाय कामान् ।
शुद्धचित्तोऽगमत् मा पूर्ण चद्र प्रभास्वर ॥ १८१ ॥
कोणा गमनस्य पुत्र' (स) विरज. (च-)ासस्कृत ।
शुद्धचित्तोऽगमत् मा अनुत्तर देव इव चिन्तयन् ॥ १८२ ॥
अशक्नोत् महर्षि प्रथमं ऋद्धिपादम् ।
उपायुंक्तातिबलं चित्त भवितु बुद्धस्य श्रावक ॥ १८४ ॥
शुद्धचित्तस्य संजातो भवितुं बुद्धस्य श्रावक ।
वदित्वा तथागतं अवोचत् पुरुषोत्तमम् ॥ १८५ ॥
प्राप्तो मार्गं इह जन्मनि नाम गोत्र (च) ।
सम्यग्दृष्टिं धर्मं गमीर प्राप्तोऽनुत्तर मार्गम् ॥ १८६ ॥
विविक्तस्थापितो भिक्षवो विगतान्तारजोमला' ।
अकुसीति-वीर्यैरभिण छेत्स्यति (ते) भवपाशम् ॥ १८७ ॥
इमे सन्ति सर्वे बुद्धा साद्यन्त हेतुप्रत्यया: ।
शक्तास्तथागतासो तेन (दिशन्ति) देशवाना ॥ १८८ ॥

बुद्धोऽवोचदिद महानिदानसूत्र, अथ ते भिक्षवः श्रत्वा बुद्धस्य
नस समन्वमोदन्त ॥

॥ (इति) बुद्धभाषिते दीर्घागमसूत्रे प्रथम भाग ॥
